वक्तव्य



हास्य-व्यंग्य

चकल्लस

(हास्य-व्यंग्य)

मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपये (125.00)

संस्करण : 1956 अमृतलाल नागर

CHAKALLAS (Satire) by Amritlal Nagar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

चकल्लस

अमृतलाल नागर



राजपाल

भूमिका

ये संकलित रचनाएँ कुछ तो विनोदी मौजों में लिखी गई थीं और कुछ आकाशवाणी तथा कुछ पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी। इस संग्रह का नाम मैंने इसीलिए मूलत: 'रंग-तरंग' रखा था किन्तु भाई विश्वनाथ जी को इसमें मेरी मनोसंगति चकल्लस शब्द से शायद कुछ अधिक सटीक बैठती नजर आई। खैर। मुझे यह नाम भी सादर, सप्रेम स्वीकार है। वैसे मेरी इच्छा थी कि अपने 'चकल्लस' पत्र की पुरानी फाइलों का एक संग्रह अलग से प्रकाश में आता तो रसिक पाठकों के मनोरंजनार्थ हास्य-विनोद और व्यंग्य के कई बहारदार नमूने फिर से सुलभ हो जाते। 'चकल्लस' के 'भाभी अंक' और 'एप्रिल फूल अंक' में पुराने साहित्य महारथियों की अनेक रचनाएँ अब भी पढ़ने पर मजा दे जाती हैं। 'चकल्लस' के इन्हीं दो विशेषांकों पर मुझे आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी से दो सर्टिफिकेट भी प्राप्त हुए थे।

मैंने आज की शैली के अनुसार विशुद्ध व्यंग्य नहीं लिखा, सहज मस्ती भरा मन पाया, जब-जैसी मौज आई वैसी ही रंग-तरंगों में स्वयं बहकर अपने पाठकों को भी बहाता रहा। इस संग्रह की अनेक रचनाओं पर मुझे सराहना के मौखिक और लिखित 'शब्द-पदक' प्राप्त हुए थे। उन्हीं से प्रेरित होकर इन रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने की इच्छा भी हुई। मेरे छोटे पुत्र डॉ० शरद नागर ने इन रचनाओं को श्रम से सहेजकर रखा और संजोया, इसके लिए वह मेरे आशीर्वाद के पात्र हैं।

—अमृतलाल नागर

क्रम

तथागत नई दिल्ली में

कुशीनारा में भगवान बुद्ध की विश्राम करती हुई मूर्ति के चरणों में बैठकर चैत्र-पूर्णिमा की रात्रि में आनंद ने कहा—"शास्ता, अब समय आ गया है।"

भगवान बुद्ध की मूर्ति ने अपने चरणों के निकट बैठे इस जन्म के वृषभ देह आनंद से पूछा—"कैसा समय आवुस्स ?"

"दिल्ली चलने का भगवान।"

भगवान थोड़ी देर मौन सोचते रहे, फिर बोले—"आवुस्स युग के प्रभाव से मैं जड़ हो गया हूं। देखते नहीं मूर्ति के रूप में मैं यहां जैसा लिटा दिया गया, वैसा ही लेटा हूं, जहां जिसने बैठा दिया, बैठा हू, खड़ा किया तो खड़ा हूं, तोड़ डाला गया तो टूटा पड़ा हूं। इस जड़ता के कारण मेरी स्मृति सबाविस्थ है आनंद, उसे निर्वाण निद्रा से जगाओ तभी सम्यक सम्बुद्ध तुम्हारी बात पर विचार कर पायेंगे।"

इस जन्म के वृषभदेह आनंद बोले—"जागिए भगवान स्मरण कीजिए कि परिनिर्वाण प्राप्त करने के लिए जब आप वैशाली छोड़कर इस छोटे से जंगली और झाड़ झंखाड़ वाले जगल कुशीनारा में पदार्पण का विचार करने लगे तब आपका यह विचार मुझे पसंद नहीं आया था। मैं चाहता था कि आपके परिनिर्वाण प्राप्त करने के योग्य स्थान कोई बड़ा नगर ही होना चाहिए जैसे चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कोशाम्बी, वाराणसी आदि थे, वहां उस समय आपके अनेक महाधनी, क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य शिष्य थे वे आपके शरीर की पूजा किया करते।"

मूर्ति रूप भगवान ने उत्तर दिया—"मेरी स्मृति जाग उठी है आवुस्स। तुम अपनी स्मरण शक्ति को भी जगाओ आनंद। मैंने तुमसे कहा था, तथागत की शरीर पूजा कर तुम अपने आपको बाधा में मत डालो। सच्चे पदार्थ के लिए प्रयत्नशील बनो। अपने आपको ही शरण बनाओ अपने से अतिरिक्त दूसरे की शरण मत जाओ। आप दीवो भव।"

वही दिया जलाए बैठा था शास्ता। पर आपकी ढाई हजारवीं जयंती की

तैयारियों में भारत सरकार ने इतने दिए जलाए हैं कि आत्मदीप अब मुझे टिम-टिमाता सा लग रहा है।" कहते कहते वृषभदेह आनंद की आंखों में आंसू झलक आए। रुंआती हुई वाणी करुणा के दलदल में फंस गई। उस दलदल से वाणी के शकट को खींचते हुए आनंद ने कहा—"इस जन्म में हाथ नहीं हैं प्रभु इसलिए पैर जोड़कर कहता हूं आप आनंद की प्रार्थना एक बार स्वीकार कर लें। कौशल, कौशाम्बी, वाराणसी न सही, एक बार अब दिल्ली अवश्य चले चलें।"

"दिल्ली में क्या होगा आवुस्स ?"

"दिल्ली में आपकी पूजा होगी प्रभु। आपकी ढाई हजारवीं जयंती मनाई जा रही है। हे शास्ता, जैसे आपका मैं हूं वैसे ही भगवान गांधी के नेहरू भी हैं। और वह आपको जगा रहे हैं तथागत। इसलिए ऐसे अवसर पर यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर दिल्ली चलेंगे तो मेरा बड़ा यश फैलेगा।"

"आवुस्स, तेरी इच्छा पूरी हो। आनंद तथागत दिल्ली जाएंगे किन्तु तुम न जा सकोगे आनंद !"

वृषभदेह आनंद ने एक ठंडी सास भरी कहा—"अनुशासन में हूं शास्ता। मैं यहीं आत्मदीप जगाकर आपके दिल्ली अवतरण के दर्शन करूंगा। इतनी कृपा अवश्य कीजिएगा कि अपने किसी धनी शिष्य को आदेश देकर एक रेडियो सेट भिजवा दीजिएगा जिससे मैं आपके दिल्ली स्वागत की रनिंग कमेंट्री सुन सकू।"

"ऐसा ही होगा आनंद।" कहकर भगवान ने पूर्ण चन्द्र की ओर देखा, चांदनी उनके तेज में समा गई। सूर्य उदय हो गया। शास्ता के दूसरे संकेत पर मध्याह्न हुआ। कुशीनारा में अनेक वर्षों से पेड़ से न उतरने वाले भगवान के एक जापनी शिष्य के कन्दमूल खाने का समय आ गया, फिर भगवान के तीसरे संकेत पर सूर्य देव इतने ढल गए कि शहरों में दफ्तरों के कमरे सूने होने लगे, सडकें साइकिलों से भर गईं। नई दिल्ली के ए० बी० सी० डी० आदि क्रम के क्वारटरों और बंगलों में चाय का समय हो गया, बच्चे पार्कों में खेलने लगे।

दिल्ली के पथरीले सेक्रेटेरिएट में काम करने वाले विनयनगर एरिया के सीक्लास क्वारटर वाली क्लर्क मिस्टर सोहन लाल ने अपनी श्रीमती के साथ चाय पीते हुए कमरे के कोने में रखे संदूकों की ओर देखा। उनकी भवें और नाक सिकुड़ गईं। चाय से गीले होंठ भी बिचक गए। पत्नी से कहने लगे—"ये कोना अच्छा मालूम नहीं पड़ता यहां सजावट की कुछ कमी है।"

मिसेज प्रेमलता ने भी चाय से गीले अपने लाल होंठ खोले बोली--"फील तो मैं भी करती हूं जी। चलो मार्केट चलकर कोई डेकोरेशन पीस खरीद लाया जाए। मगर क्या इस बेतुके कमरे में...। हमारा नसीब भी कितना खराब है, न बंगला, न मोटर, न ड्राइंगरूम...।" मिसेज प्रेमलता के लाल होंठ आपस में जुड़ गए, नाक से ठंडी आह निकालकर उन्होंने अपनी गर्दन डाल दी। 'डोन्ट वरी

ज़ालिम! सोशलिज्म में ब्यूरोक्रेसी खतम होकर ही रहेगी तब हम बंगले में रहेंगे।

मिस्टर सोहनलाल और मिसेज प्रेमलता आज के युग के पढ़े-लिखे शरीफ आदमी अर्थात् कुल्चरवर्णी साहब और मेम साहब थे, उनपर नई दिल्ली का रंग भी चढ़ा हुआ था। वह नई दिल्ली जो स्वतन्त्रता के बाद नए सिरे से नई हो गई है जहां चीनी, रूसी, बर्मी, ईरानी, तूरानी, उजबेक, खुरासानी, इंग्लिश, जापनी अमरीकी आदि भांति-भांति के तमाशे नित्य हुआ करते हैं, जहां तिरुवेन्द्रिरम से लेकर श्रीनगर तक और कच्छ से लेकर नागा पहाडियों तक के लोकगीत, लोक-नृत्य आदि आए दिन उसी तरह देख सुन पडते हैं जिस तरह छोटे शहरों में बीड़ी और सिनेमा वालो के नाचते गाते जुलूस।

नई दिल्ली के अफसरी जूते-दर-जूते, हर जूते के नीचे दबा हुआ, 'कुल्चरवर्णी' साहब और उनकी मेमसाहब दोनों ही सेक्रेटेरियो (जॉएण्ट एडीशमल और अण्डर सहित) के बगलो, बगलियों के रहन-सहन की हसरत मन में लेकर अपने सी क्लास वाले क्वारटर की सजावट करते थे। साइकिल और बस पर चढ़कर वे ठंडी आह के साथ मोटरो को निहारते, मेमसाहब भी सस्ते रेशमी कुर्ते शलवार लिपिस्टिक और नकली सोने मोती के जेवर पहन कर अर्दली, बैरा, चपरासियों के अभाव मे अपने साहब को ही अग्रेजी मे फटकार कर कलेजे को ठडा कर लिया करती थीं। दोनो ही को इस बात की सख्त शिकायत थी कि इस कुल्चर युग मे वे धन और ओहदे के अभाव मे उस एवरेस्ट पर नही चढ पाते जहां पहुंचकर आज के मनुष्य को आन, बान, शान तीनो परम वस्तुए प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए वे आम मध्यवर्गीय की तरह काटे की नोक पर हर घड़ी ऐसे विचार प्रकट किया करते थे जो समाजवादी, साम्यवादी, हिन्दूवादी, प्रांतीयतावादी, जातीयतावादी, कुठावादी, बकवादी किस्म के होते हैं।

चाय पीकर मिसेज प्रेमलता डाटते हुए बोली—"छोडो अपनी यह बकवास। चलना है तो चलो। कोई डेकोरेशन पीस खरीद लाएं। मेरे ख्याल में लार्डरामा, लार्डक्रिश्ना, लार्ड बुद्धा या लार्ड नटराजा की आर्टिस्टिक मूर्ति ले लें। इस वक्त तो यही फैशन है।"

"रामा? लार्ड? उह।" साहब ने बहुत मुह बनाकर कहा—"रामा बहोत ही प्लारिटेरिरिएट गॉड है। हिन्दुस्तान मे जिसे देखो वही राम-राम करता है। इस लिए अब वह लार्ड नही हो सकते। अब हर पुराने राजा की वकत नही रही—सिर्फ राजप्रमुखों को छोड़कर। मेरे ख्याल में लार्ड बुद्धा को ही खरीदा जाए। इस वक्त वह लेटेस्ट फैशन में है। उनकी ढाई हजारवीं जयंती भी मनाई जा रही है। हमारे प्राइम मिनिस्टर खुद इतना इन्टेरेस्ट ले रहे हैं। इसलिए खरीदना है तो बुद्धा को खरीदो।"

अणु परमाणुओं में लीन स्वर्वेत्ता भगवान बुद्ध ने सुना और सुनकर मुस्करा दिए। आनंद इस जन्म में पुंगव है उसकी बैलबुद्धि की बात मानकर तथागत फिर ढाई हजार वर्ष पुरानी देह धारण कर रहे हैं तो तथागत को देह भोग भी भोगना ही पड़ेगा। भगवान ने सोचा। और अणु परमाणुओं में लीन भगवान बुद्ध नई दिल्ली के वातावरण में प्रविष्टि गए।

साहब सोहनलाल और प्रेमलता मेमसाहब मारकेट से सैण्डिल, साड़ी, ब्लाउज और बुद्ध खरीदकर लौट रहे थे। मेम साहब ने कहा—"आज बड़ा खरचा हो गया तुम्हारी वजह से।"

"मेरी वजह से क्यों, ये साड़ी ब्लाउज क्या मैं पहनूंगा?"

"तुम नहीं पहनोगे, मगर खर्च तो तुम्हारे कारण ही हुआ।" मेमसाहब की आवाज में सख्ती आ गई।

साहब ने दबी ठंडी सांस खींचकर कहा—"जब तुम कहती हो तो अवश्य हुआ होगा। ये तुम्हारे सैण्डिल शायद मेरी खोपड़ी के लिए खरीदे गए—"

"मैं इतनी मूर्ख नहीं कि अठारह रुपए का माल तुम्हारी निकम्मी खोपड़ी पर तोड़ दूं। मगर मैं कहती हूं कि तुम्हें जरा भी बुद्धि नहीं। बुद्धि होती तो महीने के आखीर में बुद्धा को खरीदने की बात ही न उठाते। हिश, तुम्हें जरा भी समझ नहीं।" मेमसाहब के कदम झुंझलाहट में तेज पड़ने लगे।"

"बट डार्लिंग मेरे बुद्धा तो सिर्फ अठन्नी के हैं।"

"अठन्नी की क्या कीमत ही नहीं होती? इस एक अठन्नी के कारण मेरे तैंतालीस रुपए खर्च हो गए। शर्म नहीं आती बहस करते हुए भरे बाजार में।" मेमसाहब का स्वर इतना ऊंचा हो गया था कि सड़क पर आसपास चलते लोगों—अन्य साहबों, मेमों, ने भी सुन लिया और सोहनलाल साहब को देखकर मुस्कराए।

सोहनलाल साहब का सिर झुक गया, मन भारी हो गया। आदमी लाख साहब हो जाए पर क्लर्क का कलेजा पाकर वह डांट फटकार प्रूफ जरूर हो जाता है। लोगों की व्यंग्य भरी मुस्कानें देखकर सोहनलाल साहब का दिल टुकभारी तो हुआ, वैराग्य के किस्म के भाव जागे मगर फिर चिकने घड़े की तरह होकर मेमसाहब का साथ निबाहने के लिए साड़ी, सैण्डिल, ब्लाउज और बुद्ध के बोझ से लदे तेज कदम बढ़ाने लगे।

सड़क के किनारे सायबान पड़े लकड़ी के एक रिफ्यूजी रेस्टोरां से बुद्ध जयंती के मौसम में रेडियो, सुना रहा था—"बुद्धं शरणं गच्छामि।" साहब सोचने लगे काश कि आज के दिन लार्ड बुद्धा होते तो वे दफ्तर और मेमसाहब को त्याग कर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' हो जाते। हिन्दुस्तान आजाद हो गया मगर सोहनलाल

साहब को अभी तक आजादी नहीं मिली। आधे मिनट के लिए वे चुल्लू भर दुख में डूब गए।

नई दिल्ली के वातावरण में व्याप्त भगवान् ने विचार कर देखा कि उनके प्रकट होने के लिए उपयुक्त परिस्थिति और क्षण उत्पन्न हो चुका है। तथागत राष्ट्रपति भवन में प्रकट होने के बजाय पीड़ित प्राणियों के बीच में प्रकट होना चाहते थे।

पत्नी और अफसरों द्वारा चिरप्रताड़ित बाबूवर्गीय, कुल्चरवर्ण के साहब सोहनलाल के दाहिने हाथ से अचानक वह कागजी डिब्बा उछल गया जिसमें भगवान की मूर्ति थी।

'हाय मेरे बुद्धा।' साहब घबराकर बोल उठे, डिब्बे को जमीन पर गिरने से बचाने के लिए वे सुध-बुध भूलकर लपके। मेमसाहब के साड़ी ब्लाउज का डिब्बा उनकी बगल से खिसक गया।

'हाय, मेरा साड़ी ब्ला···।' मेमसाहब की बात का हार्ट फेल हो गया, आती-जाती भीड़ आश्चर्य से उभचूभ होकर ऊपर ताकने लगी और विनयनगरी साहब का तो अजब हाल था—उन्होंने देखा कि उनका बुद्धवाला डिब्बा जमीन पर गिरने के बजाय ऊपर उड़ गया और देखते ही देखते उसमें से एक प्रकाश पुंज निकलकर धरती के अन्दर बढ़ने लगा।

जनता आश्चर्य से देख रही थी। प्रकाश पुंज सिमटकर आकार ग्रहण करने लगा। काषायचीवरधारी भगवान अभयमुद्रा मे धरती पर प्रकट हो गए। वे हूबहू म्यूजियमों मे रक्खी स्वमूर्त्तियो जैसे ही थे। भेद केवल इतना था कि सिर पर घुघराले केश नही थे। भिक्खुओ के समान शास्ता का सिर भी मुण्डित था।

आकाश से भगवान पर पुष्पवर्षा होने लगी। हवा मे घंटा, शंख आदि मंगल-वाद्य गूंजने लगे, इतिहास की सैकड़ो सदियो ने 'बुद्ध शरण गच्छामि' का तिबाचा गुंजरित किया। जनता भगवान के पाद-पद्मो मे विह्वल होकर गिरने लगी। सड़कों पर ट्राफिक जाम हो गया। यह सब देखकर साहब मोहनलाल की प्रत्युत्पन्नमति जागी। वे पास की किसी दुकान से प्राइममिनिस्टर को फोन करने के लिए लपके, बौना बाद को छू पाने का ऐसा सुनहरा अवसर भला क्योंकर छोड़ सकता था, खास तौर पर जबकि यह चमत्कार उसके लार्ड बुद्धा ने दिखलाया हो।

दस मिनट के अन्दर सारी दिल्ली मे हुल्लड़ मच गया। सरकारी टेलीफोन एक दम से व्यस्त हो उठे।

सरकारी पुर्जों मे सवाल जवाब लड़ने लगे

"यह खबर उड़ाई गई है। स्टट है।"

"खबर की सच्चाई जांच ली गई है। भारत में सब कुछ संभव है। बुद्धजयंती के अवसर पर भगवान बुद्ध का आना बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। दुनिया मे इण्डिया

की प्रेस्टिज बढ़ जाएगी।"

"मगर पहले इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि भगवान बुद्ध अपनी मूर्तियों जैसे सुन्दर हैं या नहीं। क्योंकि अगर उनकी पर्सनालिटी वीक हुई तो बुद्ध जयंती का सारा शो बिगड़ जाएगा। लोगों पर बड़ा खराब इम्प्रेशन पड़ेगा।

'ठीक है। मगर यह भी जांच लेना चाहिए कि उनके विचार अब भी वैसे ही हैं और वे हमारी प्रेजेन्ट नेशनल और इन्टरनेशनल पालिसी से मेल खाते हैं या नहीं?"

"मगर पहले उनका स्वागत।"

"कैसे हो सकता है स्वागत? वह हमारे प्लान में नहीं। और बुद्ध जी को इस तरह लिखा-पढ़ी किए बगैर प्रकट नहीं होना था।"

लाल फीते पर दौड़ने वाले पुरजे हर कदम पर वैधानिक गांठों से अटकने लगे।

उधर भगवान निरंतर उमड़ते अथाह जन समुद्र के हड़कम्पी जोश से घिरते ही जा रहे थे। बड़े-बड़े धनी-धोरियों की डीलक्स लिमोसीन कारें हार्न बजाते और होड़ा-हाड़ी करते हुए भगवान की सेवा में पहुंचने के लिए भक्तों की भीड़ चीरे डाल रही थीं। हर लक्ष्मी-पुत्र चाहता था कि सबसे आगे पहुंचकर वही भगवान को अपना मेहमान बना ले। और इन्ही लक्ष्मी-पुत्रों की भीड़ मे लखपति करोड़पतियों को ढकेलते, प्राइम मिनिस्टर को फोन कर लौटे हुए विनयनगरी साहब सोहनलाल भी ठीक उसी प्रकार आगे बढ़े जा रहे थे जिस प्रकार ढाई हजार और कुछ बरस पहले वैशाली के राजपथ पर लिच्छवि कुमारों के रथों से टकराते हुए अम्बपाली का रथ आगे बढ़ा था।

सेठों ने धक्के खाकर क्रोध और उपेक्षा से सोहनलाल साहब की तरफ देखकर कहा—"ए बाबू, अपनी हैसियत देखकर होड़ लो। परे हटो।"

भगवान के भरोसे विनयनगरी साहब भी आज अकड़ गए बोले—"सोशलिज्म आ गया है जानते हो। भगवान अब तुम्हारी मोनोपली नही रही। यू डर्टी कैपिटैलिस्ट।"

पीड़ित प्राणी को सान्त्वना देने के लिए भगवान विनयनगर पधारे। भगवान की कृपा से विनयनगर इस समय शान नगर बन गया।

इतनी देर में वैधानिक आलस्य और प्रतिबन्धों की फांस काटकर राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री स्वयं भगवान की सेवा में उपस्थित हुए एवं राष्ट्रपति भवन के मुगलाराम में विहार करने की प्रार्थना की। सोहनलाल साहब की ओर एक दृष्टि डालकर भगवान बोले—"आवुस्स एक दिन इसके यहां ही विहार करूंगा। राष्ट्रपति भवन में जनता न पहुंच सकेगी।"

"भक्तों को भगवान से अलग रखने का विधान आपके देश में अब तक लागू

नहीं हुआ प्रभु। आप भले पधारे।"

भगवान ने अत्यन्त विनयशील राष्ट्रपति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सोहनलाल और प्रेमलता के चेहरे उतर गए। खैर इतनी देर ही सही, भगवान उनके घर ठहरे यही क्या कम है। प्रेमलता मेमसाहब ने साहब के कान में फूंका। भगवान से कहो सिफारिश कर देंगे। साहब तुरन्त भगवान के पास पहुंचे। उनसे कान में प्रार्थना करने लगे: "आप नेहरू जी से कह दें। वे मुझे सेक्रेटरी नहीं तो जाएण्ट एडीशनल या अण्डर—"

"ये क्या — ये क्या बदतमीज़ी है? आप भगवान बुद्ध के कान में बात करने की गुस्ताखी कर रहे हैं। जाइये यहां से।" जवाहरलाल जी नाराज़ हुए।

दुनिया भर के हवाई जहाज़ पालम हवाई अड्डे पर उतरने लगे। देश-देश की टेलीविज़न फिल्म यूनिट पहुंच गईं। चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, बरमा, श्रीलंका, तिब्बत और भारत के कोने-कोने से बौद्ध भिक्षु 'चलो दिल्ली' का नारा लगाने धर्म चक्र घुमाते पहुंचने लगे। दिल्ली काषयचीवरों और मुण्डित मस्तकों से भर गई। त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन और प्रगतिशील कवि नागार्जुन गृहस्थाश्रमी वेष मे अपने भिक्खु हृदय संभाले दौड़े चले आए। मार्क्सवादी विद्वान डा० राम विलास शर्मा को चूंकि भाषा विज्ञान का मोहन जोदारो खोदते हाल ही मे यह पता चल गया है कि भगवान बुद्ध की भाषा मे अवधी शब्दो की भरमार है, इसलिए वे भी श्रद्धा-पूर्वक भागे चले आए। पण्डित बनारसी दास जी चतुर्वेदी भगवान के प्रोपेगंडार्थ हिन्दी भवन में स्वागत समारोह का प्रबन्ध करने लगे। बुद्ध अभिनंदन ग्रन्थ के चक्कर मे डा० नगेन्द्र की मोटर का चक्का अनवरत गति से घूमने लगा। गांधी जी के समान बुद्ध जी का पोर्ट्रेट बनवाने के लिए जैनेन्द्र जी दिल्ली के हर मूंगफली वाले की दूकान से छिलके बटोरने के काम में संलग्न हो गए। हिन्दी जगत में, सारे देश के साहित्यिक जगत में नई प्रेरणा का साइक्लोन उठ आया। 'यशोधरा' के रचयिता राष्ट्रकवि स्लेट बत्ती लेकर तुरन्त यशोधरा-सर्वस्व नामक महाकाव्य रचने बैठ गए। निराला जी को भगवान बुद्ध के नाम स्वामी रामकृष्ण परमहंस का पत्र कविता लिखते देख उनके सरकारी पण्डे सरकार से लिखापढ़ी करने लगे कि महाकवि भगवान बुद्ध को चायपार्टी देना चाहते हैं इसलिए रुपये लाओ। पंत जी का मेडीटेशन एक घंटे से बढ़कर कई घंटों का हो गया और वे स्वर्ण सूर्य की अवतारणा करने लगे। दिनकर जी बुद्ध जीवन के चार अध्याय लिखने के लिए दिल्ली मे अण्डरग्राउण्ड चले गए। नवीन जी, महादेवी जी, सियाराम-शरण जी, रामकुमार जी, बच्चन जी, नरेश जी, सभी एक भाव से बुद्ध चिन्तन में रत हो गए। प्रयोगवादी कवियो ने भी बुद्ध जी पर अनेक प्रयोग कर डाले।

प्रेस कान्फ्रेंस हुई। भगवान से तरह-तरह के प्रश्न पूछे गए : स्टालिन के प्रति रूस के रवैये को आप किस दृष्टि से देखते हैं ? क्या आप प्रेजिडेन्ट आइज़न हावर से शान्ति की अपील करने अमेरिका जाना पसन्द करेंगे ? अपने और नेहरू जी के पंचशील की तुलना कीजिए। सारिपुत और महायोग्यलायन की पवित्र अस्थियों के बारे में आपके क्या विचार हैं ? बम्बई महाराष्ट्र को मिलना चाहिए अथवा नहीं ? उत्तर प्रदेश के सेल्सटैक्स आर्डिनेंस पर आपके क्या विचार हैं ? हिन्दी में प्रयोगवाद के बाद अब क्या आएगा ? आदि अनंत प्रश्नों की झड़ी लग गई। अनेक यूनिवर्सिटियों ने डाक्टरेट की डिगरियां देने का निश्चय कर डाला : भगवान को नोबुल शान्ति पुरस्कार और स्टालिन शान्ति पुरस्कार देने की बात भी बड़ी जोर से उठी। कुछ प्रभावशाली लोगों ने यह आपत्ति उठाई कि स्टालिन चूंकि इधर बदनाम हो गए हैं इसलिए उनके नाम का पुरस्कार न दिया जाए।

सारा कार्यक्रम बन गया। सबेरे राजघाट जाकर गाँधी जी की समाधि पर फूल चढ़ायेंगे। शाम को दिल्ली नगरपालिका की ओर से रामलीला के मैदान में भगवान को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया जाएगा। इस अवसर पर राष्ट्रपति भवन से भगवान का जुलूस निकलेगा। दीवाने खास में हिन्दी-उर्दू मुशायरा, रेडियो में अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, संगीत नाटक एक आदमी की ओर से सप्रू हाउस में उदयशंकर जी का नृत्य, सुब्बूलक्ष्मी का गायन तथा प्रादेशिक गीतनृत्यों का प्रदर्शन होगा। फिर भगवान को नीलोखेड़ी, भाखड़ानंगल, चूर्क, चितरंजन आदि की सैर कराई जाएगी। ताजमहल के ऊपर भी उनका हवाई जहाज चक्कर लगाएगा। अन्त में प्रधानमन्त्री के साथ पंचशील के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करते हुए भगवान फोटो खिचवायेंगे तथा रेडियो से विदाई सन्देश प्रसारित करेंगे।

दिल्ली में भगवान को लेकर बड़ा कल्चर फैला। बालों का टेढ़ा जूड़ा बांध उनपर फूल लपेटे लिपिस्टिक लगाए, अजन्ता लिबास में मिसें और मेंम साहबायें सुजाता की कल्चरल नकल करती हुई खीर के कटोरे लेकर आने लगी। भगवान को कल्चर के कारण अवकाश ही नहीं मिल पाता था। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' भगवान लोक को उपदेश देना चाहते लेकिन लोग उनके उपदेश न सुनकर जय बोलना चाहते थे, उनके आटोग्राफ, फोटोग्राफ लेना चाहते थे, उन्हें चाय लंच, डिनर, पर अपने घर बुलाना चाहते थे। कल्चर की इस भरमार से भगवान इतने थक गए कि कसियां जाकर शान्ति पाने का कसबल उनमें नहीं रह गया था। वे भरीभीड़ के बीच से अचानक अन्तर्ध्यान होकर राजघाट में समा गए।

बेचारे आनन्द कुशीनगर में रेडियो से रनिंग कामेण्टरी सुनने की लालसावश कई दिनों तक कान लगाए बैठे ही रहे।

महामति चाणक्य यू० एम० ओ० में

एक खास प्रेस एजेन्सी ने, जिसका नाम पेशे से श्रमजीवी पत्रकार न होने के कारण मैं सुविधापूर्वक भूल गया हूं, अपना एक खास प्रतिनिधि भेजकर मुझे यह सूचना दी थी कि मौर्य साम्राज्य के प्रधान मंत्री तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र के अमर प्रणेता महामति चाणक्य यू० एन० ओ० के एक विशेष अधिवेशन में भाषण करने के लिए पितृलोक से पधार रहे हैं और मुझे हिन्दी रिपोर्टिंग करने के लिए तुरंत न्यूयार्क जाना होगा।

यह स्पेशल प्रतिनिधि अमेरिका से मेरे पास चार्टर्ड प्लेन पर आया था। एक मिनट तक तो संवाद के महत्त्व पर गौर करने के बाद मैं संवाददाता और भेजने वाली प्रेस एजेन्सी की फय्याजी और दरियादिली के सम्बन्ध में ही सोचता रह गया। विदेशी अखबार और संवाद-एजेन्सियां एक-एक खबर के लिए लाखों रुपया खर्च कर देती हैं इसका क्या कारण है? तीन ही बातें समझ में आती हैं। या तो अखबार वाले बड़े घुटे हुए व्यापारी हैं, लाख लगाकर दस लाख का मुनाफा कमाते हैं, या फिर बड़े कर्तव्यनिष्ठ और सिद्धान्तवादी हैं जो अपने सिद्धान्त और परमार्थ के लिए पैसा पानी की तरह बहाने में जरा भी नहीं हिचकते। तीसरा कारण यह हो सकता है कि वे···जाने दीजिए न कहूंगा। चाणक्य को अपने देश में बुलाने वाली कौम की प्रेस एजेंसी और सब कुछ हो सकती है, पर मूर्ख कदापि नहीं हो सकती।

जी हां, संवाददाता ने मुझे बतलाया कि सिद्धान्तों की ठण्डी लड़ाई से तंग आकर यू० एन० ओ० के सेक्रेटरी जनरल मि० हैमरशोल्ड ने यह प्रस्ताव रक्खा कि चूंकि लड़ाई और स्वार्थ की भावना इस समय सारी दुनिया में व्याप्त है इसलिए ब्रह्माण्ड के किसी दूसरे ग्रह से एक निष्पक्ष और सम्माननीय अतिथि को बुलाकर उसकी तटस्थ बातों पर ही पृथ्वी नामक ग्रह के भविष्य का अंतिम निर्णय किया जाय। बात रूस, अमेरिका और दोनों के प्रतिनिधियों को खास तौर से पसन्द आई। भारत को तो शांति से सम्बन्ध रखने वाली हर न्याययुक्त बात पसन्द ही होती है। उनासी राष्ट्रों ने थोड़ी बहुत बहस के बाद इस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया।

मगर सवाल यह था कि किस ग्रह से और किसको बुलाया जाए ? किस ग्रह में विद्वान हैं ? फिर वहां की भाषा की जानकारी यहां किसी को नहीं। वे क्या कहेंगे, क्या सुनेंगे और हम धरती वाले क्या समझेंगे। इस समस्या को लेकर सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि एक दूसरे का मुंह ताकते रह गए। हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव पेश किया कि यदि पितृलोक से किसी महामान्य पूर्वज को बुलाया जाय तो भाषा आदि की समस्या सहज ही में हल हो जाएगी।

पितृलोक के सम्बन्ध मे किसी भी राष्ट्र को साइन्टिफिक जानकारी न थी। इसलिए उस लोक में विश्वास भी न था। परन्तु जब हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि ने यह विश्वास दिलाया कि पितृपक्ष में पानी देकर बत्तीस करोड़ हिन्दुओं ने पितृलोक को आज तक सींचा है और अश्विन के हर पितृपक्ष में आज भी पितर लोग ब्राह्मणों के पेट में उतरकर अपना श्राद्ध जीमते हैं तो सब को पितरों और उनके लोक पर विश्वास हो गया। केवल रूस ने शंका उठाई।

वहां का प्रतिनिधि बोला : हम अपने विद्वान सहयोगी भारत के प्रतिनिधि की बात मानकर यह तो विश्वास कर लेते हैं कि एक पितृलोक है, और वहां पितृ-गण रहते हैं लेकिन इस बात का क्या सबूत कि सारी दुनियां के पितृगण वहां होंगे। और जी जान से सलामत होंगे ? पितरों को पानी देने का रिवाज सिर्फ हिन्दु-स्तान में ही है, इसलिए यह मुमकिन है कि भारत के पितृगण जीवित हों। मगर चूंकि दूसरे देशों में पानी नहीं दिया जाता इसलिए यकीनन बाकी दुनिया के पितर भूख में तबाह हो चुके होंगे।

हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधियों ने कौमी जोश के साथ रूसी प्रतिनिधि का यह तर्क काट दिया। माननीय भारतीय प्रतिनिधि ने तर्पण विधि समझाते हुए कई मन्त्रों का हवाला देकर कहा कि हमने मनुष्य ही क्या देव, ऋषि, भूत पिशाच, औष-धियों, वनस्पतियों, तक के पितरों को भी पानी पिला-पिला कर जीवित रक्खा है फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या। इस जन्म के, उस जन्म के, जन्म जन्मान्तर के बन्धु-बान्धवों का हिसाब जोड़कर हमने यूनीवर्सल ब्रदरहुड के सिद्धान्त को सदा से पानी पिलाया है अतएव अब किसी को भी पितृलोक पर अविश्वास नहीं होना चाहिए।

प्रेस एजेंसी के खास प्रतिनिधि का कहना है कि इस पर सब राष्ट्रों ने एकमत होकर पितृलोक के अतिथि पर विश्वास कर लिया। अब लड़ाई इस बात की थी कि देश के किस पितृ को बुलाना चाहिए। रूस महाप्राण लेनिन को बुलाने के लिए अपने वीटो के अधिकार तक का प्रयोग करने पर तुल गया। कूटनीति-प्रेमी राष्ट्रों का ग्रह लेनिन के नाम से ही कांप उठा। बड़ा झगड़ा हुआ।

किसी ने कहा कि बुद्ध, ईसा और गांधी में से किसी को बुलाना चाहिए ये लोग सन्त हैं, रसगुल्ले ऐसा मीठा प्रवचन करके चले जायेंगे। इस तरह तात्कालिक

प्रस्ताव का सांप भी मर जाएगा और लाठी भी बची रहेगी जो तीसरे महायुद्ध में काम आयेगी। लोगों को यह सलाह पसन्द थी परन्तु कूटनीति प्रेमी राष्ट्रों को यह भय था कि सत्य और अहिंसा के पुजारी ये सन्त लोग उपदेश तो मीठी भाषा में देंगे, पर सत्य कहने से भी न चूकेंगे। इसलिए उनके उपदेशों का मीठा रसगुल्ला स्वार्थियों के हित में गरिष्ट साबित होगा। इस तरह सन्तों को बुलाने के प्रस्ताव पर भी वीटो के ओले बरस गए।

सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और कन्फ्यूशस भी नामंजूर हुए। मार्क्स, एंगेल्स के नाम होंगे पर आने के पहले ही सभा में हुल्लड़ मचा दिया जायेगा। तब किसी ने कहा कि इतिहास लेखकों के आदि पूर्वज हेरोडोटस को बुलाया जाय। लोग अपने अपने इतिहासों की पोल खुलने से घबराए। किसी ने महाराजनीतिक मेकिआवेली का नाम सुझाया। बड़ी खमचख मचती रही।

उसी समय राजनीति से रिटायर हो चुकने के बावजूद भी महाप्रभु चर्चिल को विलायत मे सूझ आई और वायरलेस द्वारा उन्होंने यू० एन० ओ० के कूट-नीतिज्ञों को सलाह दी कि भारतवर्ष के परम प्रवीण कूटनीतिज्ञ मौर्य साम्राज्य के प्रधान मंत्री आचार्य चाणक्य उपनाम कौटिल्य को आमंत्रित किया जाय। सलाह वजनी थी। एक तीर से दो शिकार होते थे भारतवर्ष अपने देश के पूर्वज को आमन्त्रित किए जाने के कारण खुश हो जाएगा और साथ ही ससार को एक परम कूटनीतिज्ञ की सलाह भी मिलेगी।

इस तरह चाणक्य के नाम पर गुटबन्दी का अन्तिम फैसला हो गया और किसी न किसी तरह यह प्रस्ताव यू० एन० ओ० में पास भी हो गया।

अमेरिका स्वागत-सत्कार करने में बड़ा पटु है। किसी समय भारत को इस ख्याति का गौरव प्राप्त था आज भी अपने पेट पर पट्टी बांधकर अतिथियों का स्वागत करने मे वह नही चूकता। मगर ये कि पैसे वाले की बात बड़ी होती है। प्रेसीडेन्ट आइजेन हावर ने अपना खास ऐटामिक राकेट पितृलोक से आचार्य चाणक्य को लाने के लिए भेजा।

अखबारो को यह सूचना दी गई कि पहले पेज पर वाण्डेड मार्का विज्ञापनों के स्थान की पूर्ति आचार्य चाणक्य के आगमन की सूचना से की जाय। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र और चाणक्य नीति दर्पण के उद्धरण प्रकाशित किए जायें। अखबारों मे छापी जानेवाली आचार्य चाणक्य की तस्वीरों के सम्बन्ध में विशेष आदेश यह दिया गया कि उनकी छपाई की संख्या दुनिया की आबादी से कम से कम सवाई होनी चाहिए।

रेडियो वालों ने चाणक्य के संस्कृत श्लोकों का अंग्रेजी में भाष्य तैयार करा-कर प्रचार करना शुरू किया। रेस्तरां, होटलों और सिनेमागृहों में आचार्य चाणक्य के पोस्टर लगाए गए, गोपट्रिक द्वारा मिस्टिक भारत के चाणक्य, पितृलोक

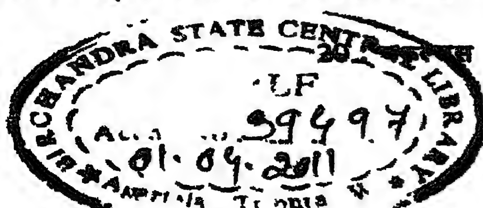
उतरते हुए चित्रित किए गए थे। दुनियाभर के अखबारों में धूमधाम से चर्चा होने लगी।

पितृलोक से आचार्य के शुभागमन से एक दिन पहले संसार के सब महापुरुष न्यूयार्क में उपस्थित थे। रूस से मार्शल बुलगानिन और ख्रुश्चेव स्वयं पधारे थे, ब्रिटेन से मि० बटलर और मि० लायड, भारत से जवाहरलाल नेहरू और कृष्ण मेनन, चीन से माओत्से-तुंग और चाऊ एन लाई बड़ी तोपों में प्रमुखतम थे। मार्शल टीटो, कर्नल नासेर आदि को लेकर पहले तो जरा खटपट चली। कभी रूस बिगड़ता तो कभी ब्रिटेन या फ्रांस। मगर जवाहरलाल नेहरू और हेमर शोल्ड के मजबूती से बीच में पड़ने पर वे सब भी बुला लिए गए थे। पाकिस्तान के प्रधान मंत्री जनाब हुसन सोहरावर्दी साहब ने अपने टूर प्रोग्राम में कुछ दिन और जोड़ लिए और चौधरी मुहम्मद अली के साथ सम्मिलित हुए। श्री चर्चिल विशेष निमंत्रण पर पधारे थे और युनाइटेड नेशन्स की ओर से आचार्य चाणक्य का विशेष सम्मान भार उन्ही को सौंपा गया था।

दही की लस्सी और जलेबी दालमोठ का नाश्ता करके हम लोग उड़ चले। एक बात मैंने आम तौर पर देखी है कि अमेरिका वाले स्वभाव के बड़े मस्त, खुशमिजाज और निडर होते है। रस की विकृतियों तक से वे रस ग्रहण करने मे बड़े हठीले होते हैं। फिर भगवान का दिया सब सुख है, पेट से तरी है इसलिए मेले तमाशों का शौक भी है, दान-धरम सदावर्त का भाव भी है। सो ये होते बड़े मस्त हैं। कुछ भी खा पी लेंगे जहां रहेंगे उस रंग मे सहज ही रंग जायेंगे। मेरे अमेरिकी दोस्त ने लस्सी, जलेबी को खूब पसन्द किया हां दालमोठ की मिर्चों से जरूर घबराया। फिर भी मेरा शेर आँखों को बार-बार रूमाल मे पोछते हुए सब खा गया।

रास्ते भर उसने मुझे समझाया कि जिन्दगी चार दिन की है और उस चार दिन की जिन्दगी का एक-एक क्षण सिर्फ अपने मन की मस्ती से बिताना चाहिए; दूसरे का ख्याल करने की फुरसत भी न लेनी चाहिए। दूसरे को हम अपने मन की मस्ती में खुद ही शरीक कर लें तो ठीक मगर किसी दूसरे को हमारे मन की मस्ती में शरीक होने का हक हमसे न मांगना चाहिए ये जबरदस्ती की बात है। बेजा बात है। रास्ते भर हमने राजनीति पर एक बात नही की। हालीउड और बम्बई के सिनेमा स्टारों की तुलना, रेस, होटल, डान्स, आधुनिकता, इन्हीं बातों की क्या कमी थी हमारे पास? ये सब कल्चरल बातें करते हुए हम लोग चले गये।

चाणक्य के पृथ्वी पर अवतरण करने का मुहूर्त सवेरे आठ बजकर तीस मिनट पर शोधा गया था। ठीक आठ बजकर उन्तीस मिनट पर सबकी नजरें आसमान की ओर उठ गई। मिनट भर के अन्दर आचार्य का राकेट पृथ्वी पर आ गया।



पितृलोक से भूलोक पर सदेह आनेवाले इस प्रथम महापुरुष का सर्वप्रथम स्वागत अमेरिका की ओर से सम्पूर्ण राजकीय और सैनिक सम्मान से साथ प्रेसीडेन्ट आइज़न हॉवर ने किया। यू० एन० ओ० ने उनका भव्य स्वागत अपने इलाके में किया।

कल्पना करने की बात है कि इतिहास में पहली बार पृथ्वी के सारे दिग्गज एक साथ डोल रहे थे। आइज़न हॉवर, बुलगानिन, नेहरू, माओ, चर्चिल, टीटो और भी एक से एक यथा नाम तथा गुण नेता लोग एक साथ एक जगह उपस्थित थे। न्यूज रील वाले, प्रेस और रेडियो संवाददाता, फोटोग्राफर, दुनिया भर के शौकीन रईस जो पैसा खर्च करके यहां आ सकते थे। अजब मेला लगाया। अमेरिका की सरकार के विशेष आग्रह और निमंत्रण पर श्री कन्हैयालाल मानिक लाल मुंशी महोदय दुभाषिये का महान उत्तरदायित्व संभाल रहे थे। शकुन विचार से मैसूरी हाथियों के बच्चे भी वहाँ लाये गए थे।

सबसे पहले गजवन्दन द्वारा आचार्य का स्वागत हुआ और उनासी राष्ट्रों के राष्ट्रगीतों की धुनें एक साथ बज उठीं। स्वरों में साम्य लाने के लिए महीनों पहले से बड़े-बड़े रियाज और रिहर्सल किए जा रहे थे। गजवन्दन के बाद काशी के वेदपाठियों के छौनों ने न्यूयार्क में वैदिकध्वनि का प्रसारण किया।

आचार्य के भोजन और सुविधा का भार उनके घरवालों के अलावा और कौन लेता ? देश से गंगाजल, आटा, दाल, चावल, मिर्च मसाला, शाक-भाजियां आदि सब कुछ भेजा गया था। स्वयं विजयलक्ष्मी पण्डित और इन्दिरा गांधी ने नहा-धोकर चौके में लकीर मारकर रसोई बनायी।

आचार्य चाणक्य को तीसरे पहर एसेम्बली में भाषण करके सूर्यास्त होते ही पितृलोक को लौट जाना था, समय बहुत कम था, परन्तु उतने में ही दुनियां भर से आये हुए एक हजार युनिवर्सिटियों के प्रतिनिधि एल० एल० डी० और डी० लिट की डिगरियां लेकर पहुंच गये। आचार्य भोजन के बाद पान चबा रहे थे, सबकी डिगरियां बटुरवा कर कमरे के एक कोने में रखवा दीं।

तभी अनगिनत पत्रकार छेड़े हुए छत्ते की मधुमक्खियों की तरह आचार्य के चारों ओर भनभनाते हुए चिपट गये। उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। आचार्य को झपकियां आ रही थीं। पत्रकारों के समस्त प्रश्नों को एक साथ समेटते हुए चाणक्य ने उत्तर में अपनी नीति का यह उपदेश दिया कि यदि सफलता चाहते हो तो सदा ये सोचते रहो कि समय कैसा है, कितने मित्र हैं, कैसा देश है, मैं किसका हूं, मेरी शक्ति क्या है, और कितनी है। यह मंत्र देकर आचार्य ने सबको विदा कर दिया।

एसेम्बली में उस दिन बड़े-बड़े प्रबन्ध किये गये थे। बुजुर्ग और दुनिया देखे हुये पत्रकारों का कहना है कि ऐसा अभूतपूर्व सम्मेलन भविष्य के लिए भी पहुंच

से हाथ भर ऊँचा आदर्श ही बना रहेगा। मानव विकास की अगली पीढ़ियां इस घटना का उल्लेख पढ़कर इतिहास पर उसी प्रकार अविश्वास करने लगेंगी जैसा कि हम महाभारत की घटनाओ पर करते हैं।

श्री चर्चिल के भाषण में उनके जीवन भर का साहित्यिक एवं राजनैतिक अनुभव बोल रहा था। आचार्य चाणक्य ने बडी गम्भीरता के माथ उनका भाषण दुभाषिये महोदय की सहायता मे सुना। जनता मंत्रमुग्ध हो गयी इसके बाद तालियो की घनघोर गड़गड़ाहट और फ्लैश लाइटों की चमक में स्वयं आचार्य बोलने को खडे हुए। अपने भाषण में आचार्य चाणक्य ने कहा कि सबसे पहले राजनीतिज्ञ को साहसी, चालबाज, बदला लेने की तीक्ष्ण भावना रखने वाला सदा अपने उद्देश्य का ही ध्यान रखने वाला होना चाहिए। शत्रु को न्याय, अन्याय दोनो ही तरह से तबाह कर डालना न्याय है। जब आचार्य ने ये शब्द कहे तो सभा के एक पक्ष ने ज़ोरदार तालियां बजायी और दूसरे पक्ष ने 'रीएक्शनरी!' 'रीएक्शनरी!' के नारे लगाये।

आचार्य निन्दा-प्रशंसा से तटस्थ होकर अपना भाषण कर रहे थे। उन्होंने लड़ाई का चर्चा करते हुए कहा कि शत्रु का विनाश करने की चालें-कुचाले चलते हुए इस बात को भी सदा ध्यान में रखना चाहिए कि वे कुचालें व्यक्ति और समाज के हित मे इतनी घातक न हों कि शत्रु का नाश करने के बाद उनकी शक्ति स्वयं अपना ही नाश करने लगे। लड़ाई का उद्देश्य महान होना चाहिए। युद्ध जीतने के बाद यदि राष्ट्र और समाज को हर दृष्टिकोण से लाभ न हुआ तो शत्रु और उसकी सेना का नाश करना कोरे पैशाचिक हत्याकाण्ड से अधिक और कुछ नही है। यदि लडाई दोनों पक्षों का समान रूप से नाश करती है तो उसके लिए आग लगाने वाला मनुष्य या उसका गुट, कुशल राजनीतिज्ञ कभी भी नही कहा जायेगा।

कूटनीति की व्याख्या करते हुए चाणक्य ने बतलाया कि नादान दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा होता है, और ऐसे शत्रु को मार डालने का षडयन्त्र करने के बजाय उससे मेल करने में ही समाज का हित है। समाज का हित सबसे बड़ा है। अगर कुल में एक व्यक्ति के कारण दाग लगता है तो उस व्यक्ति का त्याग करके कुल की रक्षा करो। कुल की अपेक्षा गांव के हित को बड़ा मानों। देश के लिए गांव के हित का त्याग करना चाहिए अर्थात् समाज के हित और स्वार्थ की रक्षा का प्रश्न जहां आ जाय वहां कूटनीति छोड़कर ईमानदारी बरतनी चाहिए।

सुनते हैं ईमानदारी शब्द पर सभा में हुल्लड मच गया। व्यक्ति के लिए समाज को त्याग करनेवाला एक दल चाणक्य के द्वारा अपने स्वार्थों की हत्या होते देख बौखला उठा, और चाणक्य को उतनी ही गालियां दी जितनी कि उनकी प्रशंसा की थी। आचार्य की ऐतिहासिक शिखा की गांठ उत्तेजनावश खुलने

लगी परन्तु समाज के हित का ध्यान कर उन्होंने संयम से काम लिया और चुप-चाप बाहर चले आये।

इस बार उन्हें एअरोड्रोम तक पहुंचाने के लिए न तो मोटर थी न पितृलोक तक ले जाने के लिए राकेट ही। जवाहरलाल नेहरू की तमाम कोशिशें जब बेकार रहीं तो हार कर वह अपना ही वाइकाउण्ट एअरप्लेन लिए हुए आचार्य की सेवा के लिए पहुचे। मगर वह प्लेन पितृलोक तक जा पाता क्या ?

दूसरे दिन दुनिया के अखबार चाणक्य की खबरों से इतने खाली थे, जैसे कि ये यू० एन० ओ० में कभी आये ही न हों।

सीता-हनुमान-संवाद तमिल में हुआ था या अंग्रेजी में ?

माननीय श्री प्रकाशजी की स्थापना—आदिकवि महर्षि वालमीकि के अनुसार अशोक वाटिका में हनुमानजी ने भगवती सीता के पहली बार दर्शन करते समय उनसे देव-भाषा संस्कृत के बजाय मनुष्यों की भाषा में बातें की थीं। रामायण लिखे जाने के बाद से अब तक पण्डितगण बराबर इस विषय पर बहस करते रहे हैं कि आखिर वह कौन-सी लोकभाषा थी जिसमें सीताजी ने हनुमानजी से बातें की थीं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए माननीय श्रीप्रकाशजी ने कहा था कि हनुमानजी ने सीताजी से तमिल भाषा में बातें की थी। माननीय श्रीप्रकाश ने यद्यपि अपने तर्क की व्याख्या नहीं की फिर भी हमारे सुनिश्चित अनुमान से उनके तर्क का आधार निम्नलिखित बातें हो सकती हैं: – (1) हनुमानजी उत्तर भारत की भाषाएं नहीं जानते थे (2) अशोक वाटिका में सीताजी की परिचर्या करने वाली दासियां चूंकि तमिलभाषी थी इसलिए सीताजी को तमिल भाषा बोलने-समझने का अभ्यास हो गया था। (3) दक्षिण भारतीय होने के कारण हनुमानजी तमिल अवश्य ही जानते होंगे। इसलिए दोनों की बातचीत तमिल भाषा ही में हुई थी।

हमारी शंका—(1) दक्षिण भारत मे इतना हिन्दी प्रचार कार्य होते हुए भी हनुमानजी ने हिन्दी क्यों नहीं पढी ? क्या हनुमानजी का द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम से कोई सम्वन्ध था ? (2) इस बात का क्या प्रमाण है कि अशोक-वाटिका में सीताजी की परिचर्या करने वाली स्त्रियाँ तमिलभाषी ही थीं ? और यदि यह मान भी लिया जाए कि त्रिजटा आदि तमिलभाषिणी थी, तो भी एरिस्टोक्रेट राजपुत्री राजवधू सीता अपने लिए 'सीता अंबा' के बजाय 'चीता अम्मा' सुनकर अपनी आपात्कालीन उदार नीति के बावजूद उसे कदापि सहन न कर पाती होंगी। किसी बात के ऊपर यदि एरिस्टोक्रेट की नाक पर बारीक सिकुड़नें और त्यौरियों में बल पड़ जाते हैं तो कालान्तर में वे मुख पर से भले ही मिट जाएं पर मन से नहीं मिटते। जानकीजी के तमिल भाषा सीखने में वह

मनोवैज्ञानिक बाधा अपने आप में एक गम्भीर विचारणीय विषय है। (3) हनुमानजी जिस क्षेत्र के राज-कर्मचारी थे, वह कन्नड़ भाषा-भाषी था। पंपासर आदि आज तक उसी भाषा क्षेत्र में माने जाते हैं। यह भी एक उजागर बात है कि महान और सनातन संस्कृति के धनी होते हुए भी तमिलभाषियों ने कर्नाटक संगीत को अपने यहां प्रतिष्ठा दे रक्खी है। हनुमानजी संगीत विद्या के माने हुए आचार्य हैं: आचार्यों की यह मानी-जानी आदत होती है कि श्रद्धालु चेलों के सामने उनकी भाषा न बोलकर अपनी भाषा को प्रतिष्ठा देते हैं। यदि ऐसा नहीं करते तो अंग्रेजी में बोलते हैं, पुराने जमाने में संस्कृत बोला करते थे। हर हालत में संगीताचार्य हनुमन्तजी का तमिल भाषा ज्ञान इतना नहीं हो सकता कि वे सीताजी से तमिल में कूटनीतिक बातें करते।

हमारी नवीन स्थापना—उपरोक्त कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अशोक वाटिका में सीता-हनुमान-संवाद भले ही मानवीय भाषा में हुआ हो पर तमिल या किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं हुआ था। तब प्रश्न उठता है कि वह दूसरी मानवीय भाषा कौन-सी रही होगी ? हमारा विनम्र मत यह है कि हनुमानजी ने सीताजी से अंग्रेजी में बातें की थीं, और यह भी कि दोनों की मूल मातृभाषा अंग्रेजी ही थी। अपने इस मत की पुष्टि के लिए हम कुछ ऐतिहासिक तथ्य यहां प्रस्तुत करते हैं।

विदेशी नामों के गलत उच्चारण करना या उन्हें अपने ढंग से ढाल लेना मनुष्य की पुरानी आदत है। भारतीय लेखकों ने यूनानी 'अलेक्जेण्डर' को अलक्षेन्द्र' और 'अलिक सुन्दर' नामों से पुकारा और 'मिनाण्डर' को 'मिलिन्द' बना दिया। इसी तरह यूनानी इतिहासकारों ने 'पुरु' को 'पोरस', 'श्रीकृष्ण' को 'हिराक्लीज' और 'चन्द्रगुप्त' को 'सैण्ड्रोकोटस' बना दिया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम सीताजी के पिता और पितामह के नामों पर तनिक विचार करें। उनके पिता का नाम जनक है और दादा का मिथि। मिथि से तुरन्त अंग्रेजी शब्द myth का ध्यान हो आता है। ऐसा लगता है कि इंग्लैंड निवासी कोई मिथ किसी प्रकार घूमते-भटकते बिहार प्रदेश के विदेह क्षेत्र में पहुँच गये। तकदीर और तदबीर की कृपा से मिथ साहब वहां के राजा हो गये। गंवार प्रजा के उच्चारण दोष के कारण ही 'मिथ' शब्द 'मिथि' हो गया। राज्य स्थापित हो जाने पर मिथ साहब ने इंग्लैण्ड से अपने बाल-बच्चों को भी यहीं बुला लिया। मि० मिथ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मि० जान के था। मि० जॉन के अपने साथ अपनी पोष्यपुत्री मिस जॉन के को भी मिथिला ले आये। यही मिस जॉन के हमारे इतिहास में जानकीजी के नाम से विख्यात होकर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की अर्धांगिनी हुईं।

मिस जॉन के का पूरा नाम क्या है—मिस जान के का भारतीय नाम सीता है। इस नाम की वास्तविकता पर विचार करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है

कि उनका विलायती नाम क्या था। चूंकि सीताजी हमारे भगवान् की पत्नी हुईं, उन्हें जगदंबा का पद मिला। इसलिए भारतीय पुराणकारों ने उनका असली नाम गायब कर देने का षड्यन्त्र रचा जिससे कि उन्हें कोई विलायती न समझ सके। लेकिन, 'सत्यमेव जयते!' आखिर हमें पता लग ही गया। 'सीता' शब्द से दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो यह कि वो मि० जॉन के को हल चलाते समय मिली थी और दूसरी यह कि वो पश्चिम से आई थी। 'वाल्मीकीय रामायण' में लिखा है कि राजा भगीरथ की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने गंगा को जब अपनी जटा से बिन्दु सरोवर में छोड़ा तो उसकी सात धाराए बही। तीन धाराएं पूरब मे गयी, तीन पश्चिम में और सातवी को भगीरथ ले भागे। पश्चिम में जाने वाली गगा की तीन धाराओ मे से एक का नाम सीता है। इससे यह सिद्ध होता है कि पश्चिम से आने के कारण ही राजपुत्री मिस जान के को भी सीता कहकर पुकारा गया। साथ ही इससे यह भी सिद्ध होता है कि मि० जान के ने राजा जनक बनने से पहले इंग्लैण्ड में हल चलाते समय ही सीता को पाया था। अब प्रश्न यह आता है कि इंग्लैण्ड में उन्हें कहां पाया गया ?

मिस कैम्ब्रिजा जान के—सीताजी लक्ष्मीजी की अवतार हैं। लक्ष्मीजी के नामों की फहरिस्त में एक नाम कम्बुजा भी है जो 'अलक्षेन्द्र' और 'सेण्ड्रोकोटस' के समान ही बिगड़ा हुआ लगता है। वास्तविकता यह मालूम होती है कि जब मि० जान के सपरिवार मिथिला पहुंचे तो एक नई लड़की को देखकर राजा मिथि ने पूछा कि यह कौन है। जानके बोले, यह धरती की बेटी है, मैंने इसे हल चलाते समय पाया था। मिथ साहब बड़े प्रसन्न हुए, कहा : "ओ, तब तो ये हमारी कैम्ब्रिज की धरती की बेटी है। इसका नाम कैम्ब्रिजा रखता हूं।" इस कैम्ब्रिजा शब्द की बनावट ही यह सिद्ध करती है कि तब तक मिथ साहब पर भारतीय संस्कृति, साहित्य और व्याकरण का पूरा प्रभाव पड़ चुका था।

सीताजी की वंश-परम्परा और मातृभाषा के प्रश्न को हल करने के बाद अब अंग्रेजी को हनुमानजी की मूल मातृभाषा सिद्ध करना ही हमारा एकमात्र परम पावन कर्त्तव्य शेष रह जाता है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले तक हमारे देशवासी इंग्लैण्ड वालों को लाल मुंह का बन्दर कहा करते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले इंग्लैण्ड में भी वानर राज्य ही था और इसीलिए डार्विन अपने पुरखों को शीघ्र पहचान सका था। किष्किन्धा में भी वानर राज्य था पर ये वानर काले मुंह के थे। इन किष्किन्धावासी वानरों से भेद करने के लिए ही इंग्लैण्डनिवासी मि० हॅनमॅन हमारे देश में आज तक सिन्दूर से रगे जाते हैं। महावीर मि० हॅनमॅन ने लंका विजय के बाद भगवान् श्रीराम से बड़ा इनाम-इकराम पाने पर अपने देश में 'लंका क्षारक' नाम का एक नगर

बसाया था जो अब अंग्रेजी उच्चारण की विवशता के कारण 'लंकाशायर' कहलाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि भारत में हनुमान के नाम से प्रसिद्ध लंका-क्षारक कपीश्वर मि० हॅनमॅन की मातृभाषा भी वास्तव में अंग्रेजी ही थी।

सीताजी दुमविहीन क्यों?—कहा जाता है कि लंका विजय के उपरान्त सीताजी जब राम के कैम्प में आई तो किष्किन्धा की वानरियों ने उनके दर्शनों की लालसा प्रकट की थी। उन्होंने सुन रक्खा था कि सीताजी अनुपम सुन्दरी हैं पर जब उन्होने उन्हें देखा तो बहुत निराश हुई। वानरियों की दृष्टि में बेदुम की वानरी भला सुन्दरी कैसे मानी जा सकती थी? तब मि० हॅनमॅन अर्थात् हमारे हनुमानजी ने वानरों को बतलाया कि कैम्ब्रिज मे लोगों की प्राकृतिक दुम नही होती। वहां यूनिवर्सिटी ही लोगों को डिग्रियों के पूछ-पुछल्ले खोंसा करती है। इस प्रकार सीता और हनुमान दोनों ही अंग्रेजी भाषी थे। एकदेशीय होने के कारण ही सीताजी ने हनुमानजी को बड़ी-बड़ी शक्तियां प्रदान कर रक्खी थी—"जानकी ध्यान मात्रेण लंघिता सप्त सागरा:।" कैम्ब्रिजा जान के ने अपने पति को विलायती 'ब्यूरोक्रेसी' का भी भक्त बना दिया था। श्रीराम स्तोत्र में भगवान को 'जानकी विरहाक्रोशी श्रीराम:' कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'जान के ब्यूरोक्रेसी' के कारण ही रामराज में अंग्रेजी और लाल फीताशाही को मान्यता मिली है।

हिन्दी वालों का धोबीपाट और हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य—आधुनिक हिन्दी साम्राज्यवादी जनों के काले कारनामों को सतर्कतापूर्वक ध्यान में रखते हुए दृढ़ विश्वास के साथ हम कह सकते हैं कि हिन्दीवादी धोबियो के उत्पात के कारण ही भगवान रामचन्द्रजी को जगज्जननी सीता महारानी को देश-निकाला देना पड़ा। लक्ष्मण भी अंग्रेजी भक्त हो गए थे, स्वयं हनुमानजी उन्हें पढ़ाते थे। श्री भगवती चरण वर्मा की रिसर्च के अनुसार सीताजी को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आने के बाद लक्ष्मणजी अपने बडे भाई मे विद्रोह करके लखनऊ चले आए। मि० हॅनमॅन ने भी श्रीराम की नौकरी छोड दी और लक्ष्मण के साथ ही साथ लखनऊ आ गए। भगवती बाबू के कथनानुसार लखनऊ के लक्ष्मण टीले पर बैठकर दोनों ने आपस में बड़ी कहा-सुनी की। हनुमान जी बोले: "राम कायर हैं, हिन्दी वालों से डर कर उन्होंने सीता मा को निकाला है।" लक्ष्मण बोले "मेरे भाई को कायर मत कहो।" इस पर दोनों मे लडाई हुई। लक्ष्मणजी ने कहा कि मेरे टीले को छोड़कर चले जाओ। हनुमानजी क्रोध में छलांग मारकर गोमती नदी के उस पार चले गए और अलीगंज मे अपना मन्दिर बनवाकर रहने लगे। भगवान राम ने यह सुना तो घाघरा नदी मे डूबने चले। तब हिन्दी वालों ने प्रार्थना की—"भगवान मत डूबिए।" भगवान ने तड़पकर अंग्रेजी में कहा, "सर, यू हिन्दी वालाज़ हॅव

ग्राउण्ड मी।'' इस वाक्य के प्रथम शब्दों के कारण ही घाघरा नदी अयोध्या में 'सरयू' कहलाती है।

इन सब बातों का विचार करके हम इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि हिन्दी का मुंह काला करके हमें अब अंग्रेजी ही को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। सुनार की सौ के मुकाबले में लोहार की एक ही घनचोट बहुत काफी होती है। राष्ट्रभाषा के रूप में जब अकेली अंग्रेजी ही समर्थ है तब चौदह राष्ट्र-भाषाएं देश पर लादना बड़ी भारी मूर्खता है। साथ ही साथ घोर अन्याय और घोर नास्तिकता भी। हमें चाहिए कि श्रीराम, जानकी, हनुमान आदि अवतारी पुरुषों के द्वारा सेवित अंग्रेजी भाषा को ही धर्मभाव से शीघ्रातिशीघ्र अपना लें। सीता माता की भाषा ही हमारी असली मातृभाषा हो सकती है। जय अंग्रेजी! जय भारत दैट इज इंडिया।

(1963 ई०)

बाबू पुराण*

परम सुहावन महा-फलदायक इस बाबू पुराण को पढ़ते-सुनते आज के युग में कोई सूत, शौनक, काकभुशुंडि या लोमहर्षक यदि यह पूछ बैठे कि अद्भुत क्रांतिकारी महामहिम बाबू आखिर हैं कौन, तो मेरे जैसे साधारण साहित्य साधक के लिए सर्वसंतोषदायक उत्तर देना ज़रा कठिन हो जाएगा। अतः प्रश्न को टालने के लिए एक प्रश्न सुनाता हूं।

रेल के भीड़-भरे थर्ड क्लास कम्पार्टमेंटों मे ऊपर की सीट यदि खाली मिल जाए तो स्वर्ग-सुखदायिनी होती है। सो इस राजगद्दी के लिए भी ब्लैक का फलता फूलता धधा चल पड़ा है। एक बार सुखद यात्रा के निमित्त एक बाबू साहब ने ब्लैक वाले छोकरे से राजगद्दी के लिए सौदा पटाना आरम्भ किया। सौदा कम्पार्टमेंट के दरवाज़े पर खुसफुस स्वरों में चल रहा था, पास ही अपने होल्डाल पर दबे-भिचे एक दूसरे बाबू साहब इस सौदा-वार्ता को सुन रहे थे। उनके मन मे बाबुओचित चतुराई उदय हुई। ज्योंही एक रुपया लेकर ब्लैक वाले ने अपनी दरी समेटी त्यों ही दूसरे बाबू साहब ने ऊपर की सीट पर अपना होल्डाल आल फेंक दिया। ब्लैकवाला तो यह लीला देखते ही अपनी काली कमाई का रुपया और दरी उठाकर दरवाज़े की भीड़ चीरता हुआ ये जा, वो जा, उधर रुपया देकर सीट खरीदने वाले बाबू एकदम लाल भभूका हो गए, बोले—बिस्तर हटाइए।

दूसरे ने बिस्तर खोलते हुए उत्तर दिया—क्यों हटाऊ, खाली बर्थ पर जो बिस्तर जमा ले उसी का अधिकार है।

पहले बाबू का रुपया और रात भर का सुख-चैन खटाई में पड़ा जा रहा था, वे एकदम गरज पड़े, कहा—पर मैंने इसके लिए रुपया दिया है।

दूसरे बोले—मैं यह सब कुछ नही जानता। कानून दिखाइए, आपने कैसे ये सीट रिज़र्व कराई है ?

---

* यह निबंध स्वाधीनता-प्राप्ति से पूर्व लिखा गया था और 'हंस' में प्रकाशित हुआ था।

बाबू के मुख से और बाबू के सामने 'कानून' शब्द निकलते ही वाक्युद्ध में प्रलयंकारी गर्मी उत्पन्न हो जाती है और वह बाबुओं की मातृभाषाओं को झुलसा देती है। उक्त अवसर पर भी यही हुआ। बाबुओ की कानूनी शक्ति को संभालने के लिए उनकी जिह्वाओ पर अंग्रेजी भाषा चट से प्रकट हो गई और साथ ही अंग्रेज़ी का रोब भी उनकी हिन्दुस्तानी देहो मे दमकने लगा। गर्मागर्मी का चढाव 'हू यू नो हू आई एम' (जानते हो मैं कौन हूं) और 'आल राइट आई विल सी' (अच्छा, देख लूगा तुम्हें) तक पहुचकर उतरने लगा।

यह 'हू यू नो हू आई एम' और 'आई विल सी यू' का जोम ही इस देश की बाबू सभ्यता में सार्वभौमिक रूप से व्याप्त है। यह जोम और 'योर मोस्ट हबल सर्वेन्ट' (आपका अति विनीत सेवक) का दैन्य बाबू रूपी थर्मामीटर का अनवरत गति से चढता-उतरता पारा है और इसी के बीच मे उसकी समस्त क्रान्तियों का इतिहास उभरकर उसे और उसके देश को नया गौरव प्रदान करता आ रहा है। एक तरह से यह मानने काबिल बात है कि आर्यों और नागों के बाद भारतवर्ष के इतिहास को यदि सामूहिक रूप से किसी ने सबसे अधिक प्रभावित किया है, तो बाबुओ ने ही। बाबुओं ने ही भारतीय सभ्यता को नया अर्थ दिया है और उसका अनर्थ भी किया है। आर्यों के इंद्र के समान ही बाबुओ ने अनेक पुरानी मान्यताओं को अपने जोम के वज्र से तोड़ा है। पुरन्दर के समान अनेक रूढियों में आग लगाई है, हिन्दुस्तान की प्राचीन मर्यादाओं के बांध तोड करके क्रान्तियों के सैलाब पर सैलाब लाए हैं। पिछली एक शताब्दी का भारतीय इतिहास बाबुओं की अगति, गति और विकास का ही इतिहास है।

यो तो बाबू सभ्यता का जन्म उन्नीसवीं सदी के पहले-दूसरे दशक से ही आरम्भ हो गया था, पर उसकी जवानी गदर के बाद ही परवान चढ़ी। मैकाले की नीति के अनुसार बाबू बनाने के लिए अंग्रेज लोग हिन्दुस्तानी जवानों को अंग्रेजी पढने की लालच भरी प्रेरणा देने लगे।

गदर से पहले बादशाही नवाबी जमाने में मंहगाई सिर उठाने लगी थी। इसके और जो भी कारण रहे हों मगर एक कारण मुख्य रूप से स्पष्ट है। शाही विलासिता ने गांवों को बुरी तरह चूसना आरम्भ कर दिया था। शासन-प्रबन्ध में रिश्वत और लूट के सिद्धान्त को छोड़कर और कोई भी नियम और न्याय लागू नही होता था। शासन तन्त्र के बाहर भी जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त ही लोक-प्रचलित था। खेती, जमीन-जायदाद और स्त्रियो का अपहरण करना ही शौर्य का सर्वश्रेष्ठ लक्षण माना जाता था। राहजनी और बटमारी अपनी सीमा पर पहुंच गई थी। ऐसी दशा में अनास्था और महंगाई का बढ़ना अनिवार्य था। अंग्रेज धीरे-धीरे पैर जमाते जा रहे थे। भारतीय साहूकारों और सामन्तों से उनके गठबन्धन मजबूत हो रहे थे। इनके सहारे अंग्रेज प्रचलित शासन तन्त्र की जड़ें

खोद रहे थे। इस बार उनका महत्त्व खूब बढ़ गया था। बहुत-से सामत और साहूकार, जिन्हे बादशाही-तन्त्र से किसी प्रकार का आघात लगता, अग्रेजो की शरण मे स्वार्थवश जाते थे। अग्रेजो की साख बढ गई थी। छोटे-मोटो की कौन कहे, शासक वर्ग के लोग भी अपना रुपया कम्पनी सरकार मे जमा करते, कपनी सरकार के बांड खरीदते। इस व्यावसायिक-राजनैतिक रिश्तेदारी के कारण उभय पक्ष को एक दूसरे की भाषाए जानने की आवश्यकता हुई। गदर से पहले जिन क्षेत्रों मे अग्रेजी अमलदारी हुई, वहा अग्रेजी के जानकर भारतीयो की आवश्यकता हुई।

इस आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए अब सामाजिक आर्थिक परिस्थिति देखिए। साहूकारी मुख्यत बनियो के हाथ मे थी और ताल्लुकेदारी-ज़मीदारी ठाकुरो और मुसलमानो के अधिकार मे। ब्राह्मणो एव कायस्थो मे कुछ घराने अवश्य ठकुरैती भोगते थे, पर ऐसे घराने केवल कुछ ही थे। ब्राह्मणो के मुख्यत. चार धधे थे—खेती, यजमानी, मुनीमत और सिपाहीगिरी। कायस्थ उर्दू-फारसी पढकर शाही नौकरियो मे खप जाते थे। अमीर खत्रियो के हाथ मे बजाजा और साहूकारा था, गरीबो के हाथ म मुनीमत। गावो की महगाई से तग आकर अनेक ब्राह्मण युवक अग्रेजी पढने के लिए लालायित होते थे। अग्रेजी के लिए यह बात शुभ थी। यदि श्रेष्ठ वर्ण के लोगो मे अग्रेजी का प्रचार हो जाए तो इतर वर्णों मे भी सहूलियत से अग्रेजी की घुसपैठ सभव हो सकती थी।

गदर से प्राय सौ वर्ष पूर्व से ही कम्पनी सरकार के डाइरेक्टर और अनेक विद्वान इस बात पर ज़ोरदार बहस करने लगे थे कि हिन्दुस्तानियो को अग्रेजी सिखा दी जाती है। वे फिर अपने देश, जाति और धर्म से घृणा करने लगते हैं और पूरी तौर पर अग्रेज जाति तथा पश्चिमी सभ्यता के भक्त हो जाते हैं।

इसी वज़न पर एक दूसरे विद्वान का मत भी अपने-आपमे बडा पुष्ट दिखलाई देता है। उनका खयाल था कि भारतीय अपनी विभिन्न भाषाओ और जातियो के दायरे मे बधकर जितना भी अलग-अलग रहे उतना ही ब्रिटिश शासन के लिए शुभ होगा। इसी विद्वान ने यह भी कहा था कि अग्रेजी भाषा की एकसूत्रता मे बधकर भारत की राष्ट्रीय भावना जाग उठेगी। दोनो ही बाते सच हुई और साथ सच हुई। बादशाही के अनियत्रित शासन के बाद ब्रिटिशो की 'डिसिप्लिन' हर अग्रेजी पढने वाले युवक को पसद आने वाली वस्तु थी। यह बिल्कुल सच बात है कि सामती हुकूमतो के बहुत बुरे शासन-प्रबन्ध के बाद अग्रेजो का शासन प्रबंध हिन्दुस्तानी जनता को बहुत भाया था। रास्ते बटमार डाकुओ से साफ हो गए थे। बाजार हाट मे प्रजा की सुरक्षा थी। दासो मे भी अच्छा जीवन बिताने की इच्छा तथा अच्छे-बुरे मालिक की पहचान तो आखिर होती ही है, सदियों के दास भारत ने अपने पुराने मालिकों से नये मालिक को लाखगुना

बेहतर समझा और सराहा। हिन्दी के भारतेन्दु-कालीन कवियों में प्राय: सभी ने मलका विक्टोरिया के राज को सराहा है। गदर के तुरंत बाद ही भारत में अंग्रेजी और मलका विक्टोरिया के प्रति सहसा इतना आदर और भक्ति भाव उमड़ पड़ना पहली दृष्टि में आश्चर्यजनक लगता है। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र आदि अंग्रेज जाति के चाटुकार न थे मगर अंग्रेज़ी शासन के वे सभी गहरे भक्त थे। उनकी राजभक्ति में यही भक्ति बोलती थी।

अंग्रेज़ी-पठन-क्रांति

बाबुओं में सबसे पहली क्रांति यही थी। शहरों में विलायती मेमें ईसाई भिक्षुणियों के रूप में बड़े-बड़े घरों में आती थीं। साहब-शासन की पुरतानियों (पुरोहितानियों) को यद्यपि कोई अपने घर में न आने के लिए तो कहने की हिम्मत नहीं कर सकता था, परन्तु उनके घर से जाने के बाद सारा घर पानी से धोया जाता था। मिशन के स्कूल जगह-जगह खुलने लगे थे। ईसाई पादरी, अध्यापक और डाक्टर भारतीय युवकों मे घूम-घूमकर लोगों को अपनी सेवा से सतुष्ट करते हुए अंग्रेज़ी पढ़ने का आग्रह करते थे। हमारे रहन-सहन, रीति-रिवाज, देवी-देवता, इतिहास-दर्शन सभी को हमारे ही मुंह पर दो कौड़ी का सिद्ध किया जाता था। और उसके साथ ही साथ प्रभु यीशु के धर्म तथा अंग्रेज़ो की भाषा सीखने के लाभ बतलाए जाते थे। स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र के एक लेख 'दबी हुई आग' में हमारे उस जातीय अपमान की झांकी मिलती है, जो ईसाई मिशनरी लोगों के द्वारा निरन्तर किया जाता था। ईसाई पादरी अपना जूता दिखाकर हिन्दू बालकों को कहते थे कि यह तुम्हारे देवता हैं। अपने स्कूलों में ही नहीं वरन् महाजनी पाठशाला में भी गुरुओं को दो-चार रुपए दक्षिणा चटाकर ये पादरी अपने धर्म-प्रचार के हेतु हमारे धर्म और देवताओं की निन्दा किया करते थे। इतना ही नहीं, तस्वीरें, किताबें और मिठाइयां वगैरह बांटकर वे छोटे बच्चो को ऐसे गीत सिखलाते जिनसे बच्चों के अन्दर स्वधर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो।

माला लक्कड़, ठाकुर पत्थर, गंगा निरबक पानी।
राम कृष्ण सब झूठे भैया चारों बेद कहानी॥

इस प्रकार की अपमानजनक बातों ने भारतीय जनता में बहुत क्षोभ भर दिया। गदर में अंग्रेजों के प्रति भारतीय जनता के विरोध का एक प्रबल कारण यह भी था। इस देश की जनता अपने धर्म की निन्दा करने वालों को कभी सहन नहीं कर पाई। भले ही उनके अत्याचारों और अपनी निर्बलता के कारण वह ऐतिहासिक परिस्थितियों से अनेक बार विवश हो गई हो। गदर के बाद अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार में इज़ाफा करने के लिए दो बातें अलग-अलग कर दी गई थी। अंग्रेज सरकार की नौकरी पाने के लिए अंग्रेज़ी भाषा ही सीखना आवश्यक था, न

कि ईसाई धर्म कबूल करना। इस स्पष्टीकरण ने बड़ा काम किया। मिशनरी स्कूलों के अलावा अनेक सरकारी स्कूल भी खुले। वे अनेक युवक जो अपने धर्म के प्रति गूंगी अनास्था रखते हुए भी जाहिरा तौर पर उसे त्यागकर ईसाई नहीं बनना चाहते थे, अंग्रेज़ी पढ़कर उम्दा नौकरी पाने के लिए लालायित हो उठे। कुछ दुनियादार बापों ने अपने बेटों को अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए स्वयं उकसाया। यों अधिकतर युवकों ने अपने पुरखों से आदरपूर्वक विद्रोह कर अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। सन् 1875-80 के लगभग अवध क्षेत्र मे अंग्रेज़ी राज्य के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत लगभग 1400 छोटे-बड़े स्कूल थे जिनमें लगभग 70 हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। अंग्रेज़ी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या पांच हज़ार थी।

गांव के एक ब्राह्मण युवक ने शहर के अंग्रेज़ी स्कूल में नाम लिखाने के बाद लगातार छह वर्ष तक अपने पिता का आमना-सामना नहीं किया। वह लुक-छिप कर अपने गांव जाता था और माता से मिलता था। बहुत-से घरों में पिताओं का विद्रोह अपने पुत्रों के विद्रोहो से समझौता करने लगा। मेरे पितामह और उनके भाई स्कूल में जब तक रहते पानी नही पीते थे। स्कूल से लौटने के बाद घर के बैठकखाने में वे कपड़े टांग दिए जाते थे। अंगोछा पहनकर नंगे बदन अन्दर जाना, फिर हाथ-पैर और जनेऊ धोकर जल ग्रहण करना—वह नियम मेरे पितामह और भाइयो तक ही सीमित नही था। मैंने अनेक प्रकार के ब्राह्मण बुजुर्गों से इस ज़माने का यही चलन सुना है।

देहाती मेलो मे घोड़े पर अंग्रेज़ के जाने की बात भी मैंने अक्सर सुनी है। घोड़े पर अंग्रेज़ डाक्टर जाता है, अंधों की आंखें ठीक कर देता है, अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार करता है, अंग्रेज़ी पढ़ जाने पर अच्छी नौकरी दिला देने का भरोसा भी देता है। अंग्रेज़ी पढ़ जाने के बाद गांव के ज़मीदार-साहूकार और बड़े से बड़े प्रतिष्ठित आदमी से भी साधारण किसान के बेटे की इज्ज़त और हैसियत अधिक बढ़ जाएगी, यह प्रलोभन पददलित कुलीन किसानो को वश में करता जा रहा था। एक सज्जन ने अपने संस्मरण में मुझे सुनाया कि जब पिता की स्वीकृति पाकर वे आगरा के स्कूल में पढ़ने आए तो उस गांव के एक बहुत प्रतिष्ठित महाजन जाति के नेता ने उनके पिता को बुलाकर पूछा—क्यों जी केशवराम, (कोई भी नाम) तुम्हारा लड़का शहर मे अंग्रेज़ी पढ़ता है?

केशवराम विनयपूर्वक गिड़गिड़ाकर बोले—मुझे तो मालूम नहीं दाऊ, मुझसे तो मिलकर भी नही गया; अपनी मां से कह गया है कि वह कुछ सीखने जा रहा है।

दाऊजी ने केशवराम जी को बहुत डांटा-फटकारा और मुंह चिढ़ाते हुए कहा—अंग्रेज़ी पढ़ाकर हाकिम बनाएगा, हमसे बराबरी करेगा?

उन्होंने बहुत ऊंच-नीच समझाया। धर्म के आगे अंग्रेज़ सरकार के हाकिम

को भी झुकना पड़ेगा, बिरादरी से निकाल दिए जाओगे, वगैरह।

इन धमकियों के साथ केशवराम जी के पुत्र पढ़ते रहे और एक दिन छोटे-मोटे हाकिम बने।

जी-हुज़ूर क्रांति

गदर के लगभग 15 वर्ष बाद ही अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की बिरादरी काफी बढ़ गई थी। मिडिल और स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट ही नहीं, कुछ लोग तो बी० ए० और एम० ए० तक भी ढैया छूने लगे थे। अंग्रेज़ी के सर्टिफिकेट बटोरना और फिर उनकी चर्चा कर शेखी बघारना अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्ग अर्थात् बाबू वर्ग की चलती-फिरती विशेषता बन गई। अंग्रेज़ हाकिम को नौकरी के लिए अर्ज़ी देते समय हिन्दुस्तानी अदबो-आदाब के बड़े-बड़े अजीबो-गरीब उल्थे किए जाते थे।

अति आदरणीय हुज़ूर,

बड़े विश्वस्त सूत्र से यह जानकर कि आपके बड़े काइन्ड कन्ट्रोल में एक क्लर्क की जगह खाली हुई है, मैं बड़ी आजिज़ी के साथ, दस्तवस्ता, हुज़ूर की खिदमत में यह अर्ज़ी लगाता हूं।

मेरी योग्यता के बारे में मोस्ट हम्बली निवेदन है कि मै बहुत ही रिस्पेक्टेबिल फेमिली का हूं तथा मेरे पुरखे भी सदा से इंग्लैंड की क्वीन मलका विक्टोरिया तथा अंग्रेज़ों के लायल रहे हैं। मैं भी हुज़ूर को यह आश्वासन दिलाता हूं कि हुज़ूर को हर मौके पर अपनी लायल्टी से संतुष्ट रखूंगा।

मैं दर्ज़ा···(4-5 क्लाइमेक्स मिडिल तक) अंग्रेज़ी पढ़ा हूं तथा देवनागरी और फारसी (दोनों या किसी एक) का अच्छा अभ्यास है।

मेरे आदरणीय हुज़ूर, यदि इस मोस्ट हम्बुल एंड लायल सर्वेन्ट को अपने संरक्षण में लेंगे तो मैं हुज़ूर को पूर्ण सन्तोष प्रदान करने के हेतु कोई पत्थर बगैर उल्टाए न रहूंगा। (शैल लीव नो स्टोन अनटर्न्ड)। हुज़ूर की दीर्घ आयु और उन्नति के लिए, हुज़ूर की मेम साहब और बाबा लोगों की उन्नत्ति के लिए जब तक जिऊंगा, गाड आलमाइटी से नित्य दुआ मांगा करूंगा और मेरे बाद मेरे बच्चे भी यही दुआ करते रहेंगे और हुज़ूर का यश जब तक सूरज और चांद रहेंगे—(यावत चन्द्र दिवाकरौ) सारी दुनिया में कायम रहेगा।

मैं हू हुज़ूर का मोस्ट
हम्बुल सर्वेन्ट
(दासानुदास का अंग्रेज़ी अनुवाद)

अंग्रेज़ी भाषाविद्, हुज़ूर के इस दासानुदास ने पगड़ी उतारकर फेल्ट टोपी पहनी और लम्बा कालरदार कोट, वास्कट और नेकटाई-पतलून डाटकर उसने *अपने आपको अंग्रेज़ों से भी अधिक विलायती मानना आरम्भ कर दिया। एक*

ऐसी लहर चली कि जिसमें अंग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू को हर हिन्दुस्तानी चीज से नफरत हो गई थी। अपने अंग्रेज हाकिमों तथा पादरियों के समान ही ये पढ़े-लिखे बाबू भी वेदों को जगलियों की गीतों की किताब कहने लगे थे। उन्हें हिन्दुस्तानी भोजन से अरुचि होने लगी थी; डबल रोटी और मांस-मदिरा तथा धूम्र-पान उस समय बाबुओं के लिए एक बड़ी क्रान्तिकारी एवं आवश्यक वस्तु हो गई थी। गांधी जी की आत्मकथा में उनके मांसाहार वाले प्रसंग में उनके मित्र का जो तर्क है वह उस समय का प्राय: सार्वभौमिक तर्क माना जा सकता है। मांस खाने वाले जवान अमांसाहारियों से प्राय: यही कहते कि मांसाहार से मनुष्य बलवान होता है, अंग्रेजों की बल-बुद्धि का एकमात्र कारण मांस और मदिरा ही है। यह होते हुए भी जहां तक मुझे पुराने बाबू साहबों से पूछताछकर मालूम हुआ है वहां तक मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हूं कि हिन्दुओं ने बाबू बनकर भी, विद्रोही बनकर भी अंग्रेजों की समानता पाने के लिए कभी गोमांस ग्रहण नहीं किया। अपवाद रूप में दस-पांच अति विद्रोही बाबू शायद हुए हों तो हुए हों।

जी हुज़ूर बाबू अंग्रेजी पढ़कर अंग्रेज़ों की तरह ही हिन्दुस्तानी बोलना भी सीख गए। आटा-जाटा, वैंडमास, डर्टी निगर, काला आदमी कहने में उन्हें मजा आता था। अंग्रेज साहबों के सामने दुम हिलाना और स्वदेशवासियों के सामने गुर्राना एक आम फैशन की बात हो गई थी।

एक सबसे खराबी की बात बाबू दृष्टि से यहां पर यह थी कि उन्हें अंग्रेज़ों के समान स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी मेमों को लेकर बाहर घूमने का मौका नहीं मिलता था। आमतौर पर ये बाबू अपनी पत्नियों और घर की स्त्रियों से घृणा करने लगे थे। स्त्रियां बबुआइनें नहीं हो पाई थी। जिस प्रकार के खान-पान और आचरण में बाबू का रस उमग चुका था, उसमें भारतीय नारी के लिए अधर्म और अनाचार के सिवा और कुछ भी न था। बाबू ने अपने मनोरंजन के लिए एक समझौता किया, वह वेश्यागामी हो गया। वेश्यागामिता इसके पहले केवल रईसों और सामन्तों के बीच ही अति प्रचलित थी। औसत आमदनी के लोग इस लम्बे खर्च वाले मनोरंजन को बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे। लेकिन बाबू के लिए यही समझौता श्रेयस्कर था। आदाब, अल्काब, शीरी गुफ्तगू और मैनोशी के लिए तवायफ का कोठा उम्दा जगह थी। वहां जाकर बाबू की हिन्दुस्तानी ज़बान भी सुधर जाती थी। नए बढ़ते हुए बाबू वर्ग में वेश्यागामिता प्राय: एक आन्दोलन के रूप मे आई। वे दिन भारतीय पत्नियों के लिए बहुत ही बुरे थे। हमारी स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले ढोलक के गीतों मे वेश्याओं के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है :

रंडी घर जाना छोड़ो सनम······रंडी घर० ॥
सोने की थलिया में भोजन परोसा

सौतन संग खाना छोड़ो सनम···रंडी घर० ।।
सोने की शीशी मीने का प्याला
रंडी संग पीना छोड़ो सनम···रंडी घर० ।।

एक गीत में कहा गया है :

जब से चला है रंडी का रखना
कदर बीबी की—कदर प्यारी की गई मेरी जान

इस प्रकार के कई गीत उस जमाने में रचे गए थे।

इसी जी-हुजूर क्रान्ति में बाबुओं ने अपने नामों के साथ अपने जाति नाम भी जोड़ने शुरू कर दिए थे। शर्मा, वर्मा, राजवंशी, यदुवंशी, सक्सेना, श्रीवास्तव, कपूर, मिश्र, बाजपेई, नागर—इन सबकी जुड़ाई इसी वक्त में हुई। नाम रखने में भी सतर्कता बरती जाने लगी—मांगीलाल, घूरेलाल, सट्टीमल, मटरूमल, झब्बनलाल, दूधनाथ आदि किस्मों के नाम भला अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को क्योंकर पसन्द आ सकते थे। सट्टीमल एस० माल हो गए, देवीप्रसाद कपूर डी० पी० कैम्फर हो गए, बाबू राजकिशोर अंग्रेजी कोट-पतलून मे बहुत अकड़े तो शराब के झोंक मे अपने नाम की अंग्रेजी स्पेलिंग को उल्टाकर जे० इरोक्सा हो गए। हां, स्त्रियों के नामो में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों मे जन्म लेने वाली हमारी दादियां, मटका, डिब्बा, चुहिया, कुल्हड़, बताशो, मीरो, कल्लो, झुन्नो, मुन्नो आदि ही बनी रहीं।

हमारी पितामह पीढ़ी मे सब अधर्मी और कुकर्मी ही बने हों तो बात नहीं, बहुतों में अंग्रेजी पढ़ने के बाद राष्ट्रीय भावना और स्वाभिमान जागा। अंग्रेज जाति के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी उन्होंने अपने देश और धर्म को हीन मानने से दृढ़तापूर्वक इंकार किया। गदर के बाद बाबू का व्यापक प्रसार होने के साथ ही साथ हम यह भी देखते है कि इस देश में सामाजिक सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। वेद, उपनिषद् और गीता ने इस बाबू वर्ग की आध्यात्मिक ही नहीं राष्ट्रीय भावना को भी बड़ा बल दिया, और इसी बल के साथ उन्होंने मूर्ति-पूजा और रूढ़ियों के खिलाफ जेहाद भी ठाना। बंगाल के ब्रह्म समाज, बम्बई के प्रार्थना समाज और उत्तर भारत के आर्यसमाज के रूप में यह सुधारवादी आन्दोलन बवंडर की तरह उठा और देशव्यापी हुआ। सनातन धर्मावलम्बियों के लिए ये ब्रह्मचारी आर्य बाबू भी उतने ही बुरे थे जितने कि अंग्रेजी चालढाल वाले साहब बाबू।

ये ब्रह्मवादी आर्य बाबू सभा-सोसाइटियां बनाते, पुरानी जातीय पंचायतो के विरुद्ध नये जातीय क्लब बनाते, जातीय 'समाज' स्थापित करते, जातीय समस्याओं के सुधारवादी हल लेकर अखबार प्रकाशित करते, बाल-विवाह के विरुद्ध और विधवा-विवाह के पक्ष में लेक्चर देते और लेख लिखते, पंडों-पुरोहितों की भरपेट

खिल्ली उड़ाते तथा विलायत गमन के सिद्धान्त का जोरदार समर्थन करते थे।

बात यदि यहीं तक सीमित रहती तो रूढ़ियों के प्रति निष्ठावान सनातन-धर्मी वर्ग इन लोगों को भी धर्मभ्रष्ट म्लेच्छ क्रिस्तान मानकर उपेक्षापूर्वक मुंह फेर लेता, परन्तु ये आर्य बाबूगण साहब बाबुओं के समान चरित्रहीन और पतित नहीं थे—वरन ये लोग वेद मंत्रोच्चार और यज्ञ-होमादि भी करते थे। ब्रह्मसमाजियों, आर्यसमाजियों से उन दिनों सनातनधर्मी लोगों की तरह झोटमझोट जूझे हैं। सनातनधर्मी पण्डितों के लिए सबसे बुरी बात तो यह हुई थी कि जिन वेद-शास्त्रों की धमकी देकर वे अपने समाज पर स्वेच्छानुसार अंकुश रखते थे वे वेद आर्यसमाजियों ने जन-साधारण के लिए सुलभ कर दिए। जाति-भेद का ध्यान भी कम रखा। उत्तर भारत में आर्यसमाज एक ऐसे बवंडर की तरह आया जिसे सनातनधर्मी रोक न पाते थे। आर्यसमाजी अपने धर्म की बुराइयों के अलावा चूंकि मुसलमान मुल्लाओं और ईसाई पादरियों से भी लोहा लेते थे, इसलिए वे हिन्दू समाज को बहुत भाते थे। सनातनधर्मी पण्डितों को अपने इन शत्रुओं से करारा झटका लग रहा था।

कानपुर की घटना है, एक बार सनातनी ब्राह्मणों के उकसाने से कुछ सनातनी सेठ भी धर्ममूर्ति धर्मावतार का पद पाने के हेतु चन्दा देकर आर्यसमाजियों के खिलाफ सनातन धर्म की सभा करने के लिए कटिबद्ध हुए। तय हुआ कि जिस तरह आर्यसमाजी बात-बात में वेद का हवाला देकर वेद-मंत्रों का अनर्थ करते हैं, उसी प्रकार सनातनी पण्डित भी बात-बात में मंत्रों का हवाला दें और उनके सही अर्थ बतलाएं। कानपुर-भर में पण्डितो के यहां ढुढैया मची, किसी के घर वेद ही न मिला।

आर्यसमाजी विद्वानों में ऐसे अनेक विचित्र लोग भी थे जो हर पश्चिमी वैज्ञानिक आविष्कार को वेद से खोज निकालते थे। गैस, बिजली, रेल, तार, भाप सब कुछ वेदों मे निकल आता था। पश्चिमी भौतिक विज्ञान के नित्य नये-नये आविष्कारों और यूरोपीय जातियों की उच्चता से प्रभावित स्वदेशवासियों को आर्यसमाजियों के वेदों ने हीन भावना मे फसने से काफी हद तक बचाया। मैंने अपने देश के बुड्ढो से बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक बातें सुनी हैं। सुना है कि हमारे ऋषि-मुनि तांबे की पटरियो पर रेल चलाते थे, सोने और जवाहरात का प्रयोग कर ऐसी तरकीब से दीपक बनाते थे जो गैस (बाद में बिजली भी) की रोशनी से सौ गुना ज्यादा प्रकाशवान होते थे। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि यदि आर्यसमाज का आन्दोलन न चला होता और उसके वकील अनेक विचित्र विद्वानों ने यदि वेदों को विज्ञान की खान न सिद्ध किया होता तो बाबू देवकीनन्दन खत्री अपने अमर तिलस्मी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' की कल्पना न कर पाते।

अखबार क्रान्ति

प्रेस और अखबारों ने समाज-सुधार आन्दोलन, नागरी प्रचार आन्दोलन एवं राजनैतिक आन्दोलन को बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ बंटाया। छापे के अक्षर पढ़े-लिखे समाज के लिए विधाता के लेख की भांति अटल और विश्वसनीय हो गए। पुराने बुजुर्ग, जो हर नई चीज़ का विरोध करते थे, अखबार का भी विरोध करते थे। परन्तु इस विरोध के माथ एक आश्चर्यजनक बात मैंने एक नहीं अनेक बुजुर्गों से सुनी है—कई बड़े-बूढ़ों का यह ख्याल है कि जब से अखबार चले तब से महगाई बढ़ गई।

मिट्टी का तेल और नल क्रान्ति

आर्यसमाज और अखबारों की छत्र-छाया में बाल-विवाह भले ही न रुके हों अथवा विधवा-विवाह भले ही न हुए हों, परन्तु छोटी-मोटी क्रान्तियां अवश्य हुई। उनमें अंग्रेज़ी दवाओं, मिट्टी के तेल और पानी के नल का उपयोग बहुत ही मार्के की हैं। बंगाली डाक्टर आने लगे। बाबू घरों में स्वाभाविक रूप से रोग केवल अंग्रेज़ी दवाइयों से ही अच्छे हो सकते थे, वैद्य-हकीम उनकी दृष्टि में दहकानी-दकियानूस हो गए थे। हिन्दू बाबू घरों में अंग्रेज़ी दवा का उपयोग बड़ी ही मुश्किल से आरम्भ हो पाया क्योंकि यह धारणा फैली हुई थी कि कोई भी अंग्रेज़ी दवा बगैर ब्रांडी और बकरे-मुर्गों के सत के बन ही नहीं सकती। शुरू-शुरू में लोग इस धारणा के खिलाफ यह प्रचार करते थे कि यह बात गलत है, अंग्रेज़ी दवाइयां पाउडरों से तैयार होती हैं और पानी में घोली जाती हैं। लखनऊ के एक दवाफरोश ने, जिनकी दूकान शहर में सबसे पहले खुली, यहां तक प्रचार किया कि उनकी दवाइयां नल के पानी में भी नहीं बनती हैं बल्कि रोज़ उनके यहां ठेले पर लदकर कई कलसे गोमती नदी का पानी आता था और वह कलसों-भरा ठेला विज्ञापन के रूप में सदा उनकी दूकान के सामने खड़ा रहता था। लोग-बाग ठाकुर जी को भोग लगाकर अंग्रेज़ी दवा ग्रहण करते थे।

न जाने किस तर्क के आधार पर मिट्टी का तेल जूठन की वस्तुओं में शामिल कर लिया गया था। लोग-बाग पहले उसे अपने घर की ड्योढ़ी में ही जलाते थे, मगर जर्मनी की डीज़ल लालटेनें मिट्टी के तेल को घरों के अन्दर ले ही गईं। इसी तरह नल के पानी के सम्बन्ध में भी अनेक भ्रान्त धारणाएं फैली थी। कहा जाता था कि अंग्रेज जिस पानी से नहाते और कुल्ला करते हैं उसी को नलो द्वारा घरों में प्रवाहित कर देते हैं; नल भारतीयों को धर्मच्युत करने की एक चाल है, उसमें चमड़े का वाशर लगता है। हमारे नगर के पहले प्लम्बर एक बंगाली बाबू घर जाकर नल लगवाने के लिए अपील करते थे। उनके अनेक तर्कों में एक यह

भी था कि जिन परम पावन नदियों में स्नान करना हिन्दू अपना परम धर्म समझते हैं, उन्हीं का जल उन्हें आठों याम सुलभ होगा। फिर भी आरम्भ में अनेक वर्षों तक नलों का पानी केवल धोने-धाने के काम ही लाया गया। पीने और नहाने के लिए उसका व्यवहार न हो सका।

विलायत-गमन क्रान्ति

भक्तो ! विलायत-गमन क्रान्ति का वर्णन कर पुराणकर आगे भी बाबू की बहुत-सी लीलाएं बखानेगा। परन्तु भक्तो ! आज की पुराणवार्ता यहीं पर समाप्त होती है क्योंकि बाबू वक्ता, बाबू श्रोता ठाले की वाहवाह को छोड़कर और पुजापा न चढ़ेगा। मां कलिकाल के पुराणकर जब पेट-पूजा से निस्तरेंगे तब आगे की कथा कहेंगे।

अतिशय अहम् में

बात कुछ भी नहीं पर बात है अहम् की। आज से करीब पचास व साठ बरस पहले तक अहम् पर खुद्दारी दिखलाना बड़ी शान का काम समझा जाता था। रईस लोग आमतौर पर किसी के घर आया-जाया नहीं करते थे। बराबरी वालों के यहां भी बड़े नाज और नखरों से जाते थे। एक रईस महोदय का यह कायदा था कि अपनी बिरादरी में अगर कहीं मौत हो जाती तो स्वयं मुर्दनी मे सम्मिलित होने के लिए न जाकर अपने खास नौकर के द्वारा अपने जूते भिजवा-दिया करते थे। बिरादरी वालों को रईस महोदय का यह अहंकार बहुत खलता था। खैर उन्होंने बदला भी ले लिया। रईस महोदय की बुढिया मां मरी, बड़ी धूमधाम से उसका विमान निकालने की तैयारियां होने लगी। सेठ जी के लगुए-भगुए तो सब पहुंच गए पर बिरादरी वाले न गए—एक नौकर के द्वारा बिरादरी-भर के फटे जूतों का गट्ठर उनके घर भिजवा दिया गया। व्यक्ति के अहम् पर समाज के अहम् का बोझ पड़ गया, सेर को सवा मिल गया, घमन्डो का सिर नीचा हो गया।

व्यक्तिगत रोब के सैकड़ों दृष्टान्त पुराने वक्त मे निकालकर दिए जा सकते हैं। अंग्रेज हाकिम अपने कमरे मे एक भी फालतू कुरसी नही रखता था। बड़े-बड़ों को वह अपने सामने खड़ा ही रखता था। नवाबी ज़माने मे एक ब्राह्मण देवता थे। पढ़े-लिखे तो थे नही, हां, गुंडों में सरनाम थे। लखनऊ के एक बडे प्रसिद्ध महाजन साहजी साहब गंगाजमनी तामजाम पर बैठे चले जा रहे थे। चार बन्दूकधारी सिपाही आगे, चार पीछे और हटो-बचो की पुकार चल रही थी। बाज़ार मे लोग झुक-झुककर साहजी साहब को सलाम कर रहे थे। संयोग की बात है कि साहजी साहब को अपनी मूछों पर एकाएक हाथ फेरने की तबियत आ गई। उधर बांके महाराज की यह आन थी कि उनके सामने कोई मूछो पर ताव नही दे सकता था। जो ऐसा करता वह गोली का निशाना बनता। बाके महाराज को साहजी की कोठी से अक्सर दान-दक्षिणा भी मिला करती थी। इसलिए साहजी साहब को गोली मारने के बजाय उन्होंने उनके तामझाम पर बने शेर पर गोली दाग दी और बोले, "अबकी छोड़ दिया सावजी! मगर खबरदार, आगे से कभी मेरे सामने अपनी मूछों पर ताव न देना।"

मामला चूंकि साहजी का था इसलिए बादशाह तक खबर पहुंची और गुंड ब्राह्मण देवता की मुश्कें कस गईं और बादशाह की ओर से उन्हें फांसी का हुक्म हो गया। लेकिन साहजी साहब आज के ज़माने के अतिशय अहम्‌वादी न थे। मौका-महल देखकर ही वे अपना रोब दिखलाते थे। इसलिए बादशाह के पास जाकर बोले, "जहांपनाह, मेरी बेबसी पर तरस खाइए। अगर हुज़ूर के हुक्म के खिलाफ कुछ कहता हूं तो मेरी गरदन जाती है और अगर चुप रहता हूं तो मेरी वजह से एक ब्राह्मण की जान जाती है और उससे मेरा लोक-परलोक बिगड़ता है।" बादशाह ने साहजी साहब की बात मान ली और घमन्डी बांके को छोड़ दिया।

अतिशय अहम् में ऐसे तमाशे अक्सर हुआ करते थे। दरअसल, देखा जाए तो बात कुछ नहीं होती। महज़ एक-दूसरे के ज़ोम में एक-दूसरे को पीसने की प्रवृत्ति ही ज़ोम के खेल दिखलाया करती है। आपने उस मेढक का किस्सा अवश्य सुना होगा जिसके बच्चे ने पहली बार बैल देखा और घबराकर अपने पिता से कहा कि मैंने आज आप से बड़ी हस्ती देखी, अपने अतिशय अहम् में मेढक पेट फुलाकर मर गया, पर अपने बच्चे की नज़रों में बैल न बन पाया।

मेढकों की बात जब चल ही पड़ी है तब मुझे उनका टर्र-टर्र स्वर भी अतिशय अहम् के प्रतीक के रूप में याद आने लगा है। मेढकों की टर्र-टर्र पर तनिक ध्यान दीजिए।

मेढकों की यह टर्र-टर्र बाबा तुलसीदास जी को बड़ी सुहावनी लगी थी, लिहाज़ा लिख गए कि—"दादुर धुनि चहुं दिसा सुहाई" और यहीं तक नहीं, अपनी उदारता में स्पेस दर स्पेस से लांघते-फलांगते हुए उन्होंने मेढकों के टर्राने में बेद पढ़ते हुए लड़कों की टोली तक देख ली। खैर साहब, गुसाईं जी महाराज तो संत-महात्मा थे लेकिन अपने राम वैसे शरीफ नहीं हैं, हमने जब मेढकों का टर्राना देखा-सुना है तब हमारे मन की स्क्रीन पर दो चित्र नाच उठे हैं, एक तो चारों खाने चित्त हाथ-पैर बांधे टर्रे खां मेढकराज हमें मेडिकल कालेज के किसी छात्र या छात्रा के चाकू के नीचे नज़र आने लगते हैं और दूसरे कभी-कभी मेढकों की टर्र-टर्र में हमें हिन्दुस्तानी बाबुओं की अंग्रेजी की बोली वाली लड़ाई का दृश्य नज़र पड़ जाता है।

एक किस्सा सुनाऊं। रेल के कम्पार्टमेंट में नई सवारी के प्रवेश करने पर भों-भों तकरार, गाली-गुफ्ता और कभी-कभी हाथापाई के दृश्य भी उन सभी ने देखे होंगे जो थर्ड क्लास में यात्रा करते हैं। कभी-कभी भीड़ अधिक होने पर सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेंट के यात्री भी यही दृश्य उपस्थित करते है। खैर, तो हम एक बार थर्ड में यात्रा कर रहे थे। भीड़ खासी थी। अपनी दरी-चादर बिछाकर सीट 'रिज़र्व' करने वाले छोकरे से एक बाबू साहब ने थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में ऊपर की सीट अपने लिए रुकवाई थी। छोटा-सा दरवाज़ा, भीड़-खासी, हम लोग दूसरों

के बक्स-बिस्तरों पर किसी प्रकार टिके हुए थे। लगभग तीस-पैंतीस बरस के एक दुबले-पतले, चश्मा, चोटी, चन्दन, कमीज़-पतलूनधारी एक बाबू साहब भी हमारे पास ही किसी कनस्टर का सहारा लेकर कुछ-कुछ खड़ेनुमा बैठे थे। उन्होंने बराबर अंग्रेजी में ही हमसे बातें कीं और हम बराबर अपनी ही बोली बोलते रहे।··· तो वो बाबू साहब ने दरी बिछाकर लेटे हुए गैर-कानूनी तौर से सीट रिज़र्वेशन करने वाले छोकरे को देखकर धीरे से मेरे कान के पास आकर कहा—

बाबू—यू सी मिस्टर, ही इज़ नाट ए रिएल ट्रेवलर। (देखिए, यह असली यात्री नहीं है।)

मैंने कहा—आपने ये कैसे जाना ?

बाबू—आइ हैव सीन हिज़ फेस सम टाइम्स बिफोर आल्सो। यू सी ह्वाट ही डज ? ही बिलांग्स टु दैट गैंग आफ छोकराज हू रिज़र्व दी अपर सीट्स फार यू लाइक दिस। (मैंने पहले भी इसे देखा है। जानते हैं, वह करता क्या है ? यह छोकरों के उस दल का सदस्य है जो इस प्रकार दूसरो के लिए सीटें रिज़र्व करते हैं।)

मैंने कहा—जान पडता है कि आपने भी कभी इस छोकरे से अपने लिए इसी प्रकार सीट रिज़र्व करवाई थी।

बाबू—यस, यस-मेनी ए टाइम्स बिफोर। यू सी आई एम दी पी० ए० एक्स वाई जेड आफ दी सेक्शन बी—फ्लोरबार्थ सेक्टर इन एनीमल हज़बेंड्री, सो आइ हैव टु ट्रेवल। बट दिस इज़ ए बैड प्रैक्टिस, दिस काइंड आफ सीट प्रीज़रवेशन। चीटिंग दी पब्लिक ऐंड गवर्नमेंट बोथ। यू एग्री मिस्टर। (हां, पहले कईदफा कराई है। मैं एनीमल हसबेंड्री के फ्लोरबार्थ सेक्टर मे सेक्सन बी के एक्स वाई जेड का पी० ए० हूं, इसलिए मुझे अक्सर सफर करना पडता है। लेकिन इस तरह सीट लेना बुरी बात है। यह जनता और सरकार दोनो को धोखा देना है।)

मैंने कहा—जी हा, गलत तो है, लेकिन ये कालाबाजारी नीचे से लेकर ऊपर तक फैली हुई है। क्या किया जाए। खुद आप ही इन्हें बढावा देते हैं।

बाबू—नो, बट दिस टाइम आइ विल टीच हिम ए लेसन। इन दी मीनटाइम यू प्लीज टेक केयर आफ माई होल्डआल। (लेकिन इस दफा मैं उसे सबक सिखाऊंगा। आप सिर्फ मेरे होल्डाल पर नज़र रखिए।)

ये कहके बाबू साहब ने अपना टीन का सदूक उठाया और खडे-बैठे लोगो की भीड चीरते हुए सीट के सिराहने तक पहुच गए। सदूक ऊपर चढाया। वह छोकरा बोला, "क्या करते हैं साहब, ये सीट रिज़र्व है।"

"अबे, तेरे बाप ने रिज़र्व कराई है यह सीट ?"

"देखिए, बाप-दादा तक न पहुंचिए, अच्छी बात न होगी।"

"अच्छा-अच्छा, टिकट निकालकर दिखाइए अपना, पीछे बात कीजिएगा।"

छोकरा बोला—"आप टिकट पूछने वाले कौन होते हैं ? बुलाइए टिकट-बाबू को, अभी दिखा दूंगा।"

छोकरा तैश में आकर उठ बैठा, बाबू साहब ने तुरन्त अपना संदूक सिरहाने पर रख दिया।

वैसे ही एक दूसरे बाबू साहब ने प्रवेश किया। छोकरा उन्हें देखते ही "इधर है साब, आपकी सीट पर दूसरा साब जमा जात है, साब" करके नीचे उतरा। दूसरे बाबू साहब ने, जो देखाव मे अधिक रोबीले थे, एक बार अपनी सीट पर नजर डाली और कुली को आवाज देने लगे। छोकरा बोला कि साब, पैसे दीजिए। बाबू साहब ने रुपया दिया और ज्योही उसने अपनी दरी उठाई, त्योही पहले बाबू ने झपटकर अपना होल्डाल सीट पर फेंक दिया और आगे बढ़कर जल्दी-जल्दी उसे खोलने लगे। दूसरे बाबू तैश खा गए, बोले "ये क्या करते हैं आप ? सीट मेरी है।"

बाबू "हू सो एवर अक्यूपाइज दी सीट फर्स्ट'''।" (जो भी पहले सीट घेर ले ··)

नया बाबू—"बट आइ हैव पेड फार इट।" (मैने सबके सामने रुपया दिया है।)

पहले बाबू ने पूछा कि क्या आपने सरकार से सीट रिजर्व कराई है, और यह कहते हुए तेजी से अपने होल्डाल के तस्मे खोलते रहे। दूसरे बाबू साहब का सामान सर पर लादे हुए कुली खडा हुआ था और सामान रखवाने के लिए जल्दी मचा रहा था। बाबू साहब ने उसी सीट पर अपना सामान रखने के लिए कुली को आदेश दिया। पहले बाबू लपककर ऊपर चढने लगे। दूसरे बाबू ने भी लपककर बाबू की टाग पकडी और दोनो बाबू अग्रेजी मे लडने लगे।

"यू कान्ट अक्यूपाई दैट सीट।" (आप यह सीट नही ले सकते।)

"आई शैल श्योरली सिट हियर। आई हैव एव्री राइट।" (मैं तो यही बैठूगा। मुझे पूरा हक है।)

"डू यू नो हू आइ एम ?" (आप जानते है, मै कौन हू ?)

"ऐन्ड डू यू नो हू आई एम ?" (और आप जानते हैं मैं कौन हू ?)

लीजिए! ये ज़ोम की तनातनी बढ चली। दूसरे बाबू ने पहले बाबू की टांग घसीटकर गिरा दिया और फिर हाथापाई होने लगी। कम्पार्टमेट में हगामा मचा, पुलिस आई और दोनो को पकड ले गई। बात कुछ भी नही थी मगर अतिशय अहम् के ज़ोम मे दो बाबुओ की बात यो बिगड गई। टर्र मेढक मानो मेडिकल विद्यार्थी की छुरी के नीचे आ गए।

मैं ही हूं

मैं—वाह रे मैं, वाह। मैं तो बस मैं ही हू—मेरे मुकाबले मे भला तू क्या है! इस मैं और तू को लेकर हमारे सन्तो और बुधजनो ने शब्दों की खासी खाल-खिचाई भी की है। कबीर साहब का एक दोहा है कि "जब मैं था तब तू नही, जब तू है मैं नांय। प्रेम गली अति साकरी, तामे दो न समायें।"

ऐसे ही किसी कवि का एक और दोहा भी मुझे याद आ रहा है। वो कहते है कि—

मैना जो 'मैं-ना' कहे दूध-भात नित खाय।
बकरी जो 'मैं-मैं' कहे उल्टी खाल खिचाय॥

इस तरह के बहुत-से दोहे और उपदेश वाक्य हरदम मैं-मैं करने वालो के खिलाफ आपको खोजे से मिल जाएगे, मगर फिर भी मैं तो मैं ही हूँ। हम चुनी दीगरे नेस्त। हम चोडे बाजार सकडा। मैं की शान मे भी कुछ कम कसीदे नही कहे गए।

अच्छा, अगर एक मिनट के लिए अपने आध्यात्मिक दृष्टिबिंदु को बलायेताक रखकर हम मैं वालो की दुनियावी शान-शौकत को देखें तो यह मानना ही पडेगा कि मैं मैं ही है। आपको एक आखो देखा हाल सुनाता हू। कई बरस पहले पच्छुम के एक छोटे-से नगर मे मुझे एक फिलम लेखन और निर्देशन के निमित्त कुछ महीनो तक रहना पडा था। वहा एक बगले के आधे हिस्से को किराये पर लेकर रहता था। आधे मे मकान-मालिक स्वय सपरिवार रहते थे। बेचारे बडे ही शरीफ थे। दो पीढ़ियो पहले उनके बाप-दादे खासी शान-शौकत वाले थे, मगर हमारे मालिक मकान के बचपन मे वह पुरानी शान-शौकत धूल मे मिल चुकी थी। बेचारे एक मिल में मजदूरी करके सडक के लैम्प-पोस्ट के नीचे पढे और बाद मे अग्रेज सरकार की नौकरी पाकर धीरे-धीरे फिर अपने पैरो पर खडे हुए। एक बगला बनवा लिया और बुढापे मे रिटायर होकर बाइज्जत रहने लगे। उनके दो लडके थे। बडा साधारण हैसियत का ईमानदार था मगर अपने-आप मे खुशहाल था। छोटा लडका सरकार मे डिप्टी कलक्टर साहब का पेशकार, पी०ए० या ऐसा

कुछ हो गया था। अजी साहब, बड़ी शान हो गई थी उसकी, ज़मीन पर उसका पैर रखना मुहाल था, मिजाज़ आसमान मे रहते थे। खैर, मकान मालिक के बड़े बेटे की लडकी का विवाह होने वाला था, अपनी पोती का शुभ कारज करने का उनके मन मे काफी हौसला भी था; अपने बहुत-से नाते-रिश्तेदारों को आमंत्रित किया। छोटे साहबज़ादे भी स्वाभाविक रूप से साग्रह बुलाए गए थे। हमारे बूढ़े मकान-मालिक बेचारे जब-तब शाम को मेरे पास आकर दो घड़ी बैठ जाते और मनुष्य-स्वभाव के अनुसार ही अपना जी खोल जाया करते थे। एक दिन आए, कहने लगे, "नागर साहब, आपको दो-चार दिन को कष्ट देना चाहता हू। मेरा छोटा लडका सपरिवार आ रहा है। वो ज़रा इगलिश स्टाइल मे स्वतंत्र रहने का आदी हो गया है, आप वाले हिस्से मे उसे टिकाने की आज्ञा चाहता हू।" मैंने कहा, हां-हां, खशी से टिकाइए। मुझे कोई कष्ट न होगा।" खैर, एक दिन शाम को जब स्टूडियो से घर आया तो देखा कि एक साहब अपने नाइट गाउन और पाजामे मे बडी-बडी शान से बैठे हुए एक स्त्री पर अंग्रेजी मे गरमा रहे थे, "उन लोगो ने मुझे समझ क्या रक्खा है। अगर मेरी उचित व्यवस्था नही कर सकते थे तो मुझे बुलाने ही की क्या जरूरत थी! आखिर बप्पा साहब को यह सोचना चाहिए था कि वो एक वी० आई० पी० को अपने यहा बुला रहे हैं। मैंने अपने खाने-पीने-नाश्ते आदि का समय और मीनू इसलिए पहले से भेज दिया था कि सब प्रबन्ध ठीक-ठीक रहे।..."

अपने सोनेवाले कमरे मे जाने के लिए मै ड्राइंग रूम मे घुसा। उन दोनो ने मुझे देखा, साहब ने कुछ त्यौरिया चढाकर देखा, मगर मैं उन्हे उचटती दृष्टि से देखता हुआ कमरे का ताला खोलकर अन्दर चला गया। साहब की आवाज कानो मे आती रही। वे कह रहे थे, 'ये चाय आई थी या गुड का गरम पानी था? और मैंने लिख दिया था कि शाम के नाश्ते मे मैं आमलेट और पकौडे ही खाता हू, घर पर इतजाम न हो सके तो बाहर के किसी अच्छे होटल-रेस्टोरा से प्रबन्ध कर लिया जाए।"

"अच्छा, अच्छा, अब शान्त हो जाओ। चार दिन के लिए किसी के घर आए हो—"

नारी-स्वर कटा और साहब-स्वर भड़का। वे गरजकर बोले, "चार दिनो से क्या मतलब है जी। मैं तुमको यहा क्यो लाया? तुम तो चार दिनो के लिए मेरे जीवन मे नही आई। तुम्हे तो मालूम है कि मैं क्या चाहता हू और क्या नही चाहता।"

"अरे, तो पराये घर मे मैं कर ही क्या सकती हू?"

"पराया नही, ये मेरा घर है मै आधे हिस्से का हकदार हू..." वगैरह-वगैरह। लगभग दस-बारह मिनटों तक साहबोवाच चलता रहा। इतने ही में मेरा

नौकर ट्रे मे चाय लेकर मेरे कमरे में आने के लिए ड्राइंग रूम मे दाखिल हुआ। साहब की आवाज आई, ',एऽ! चाय इधर लाओ।"

मेरे नौकर ने कहा, "जी, ये साहब के लिए है।"

"साहब ? मेरे सिवा कौन साहब है यहा ?"

"अपने साहब के वास्ते लाया हू।" कहता हुआ वो कमरे मे दाखिल हुआ। पीछे साहब का बडबडाना सुनाई पडता रहा। हम समझ गए कि हमारे मकान-मालिक के ये पी० ए० पुत्तर 'हम चुनी दीगरे नेस्त' वाली गोत के हैं। चार दिनो मे उन्होने चार सौ बीस नाटक दिखला दिए। घर मे चाहे कोई काम हो या न हो, घरातियो, बारातियो, समधी-दामाद की खातिर मे उन्नीस-बीस की कसर बाकी रहे तो भले ही रह जाए मगर पी० ए० साहब की सेवा मे कोई कसर न रहे। दिन-भर अपनी पत्नी, नौकर, बडे भाई की पत्नी, बडे भाई, उनके बच्चो और यहा तक कि अपने बाप तक पर हरदम गरमाते ही रहते थे। बस, एक मेरा नौकर ही ऐसा था जो उनकी हुक्म-उदूली करके उनकी साहबी को भडका देता था। एक दिन मेरे स्टूडियो जाने के बाद उन्होने मेरे नौकर से मेरी आराम कुर्सी बाहर निकाल देने को कहा। उसने कह दिया, कुर्सी पर मेरे साहब शाम को आराम करते हैं। बस, पी० ए० साहब बारूद हो गए। उसी दिन घर मे बारात आई थी। सबको बारातियो के स्वागत सत्कार की चिन्ता थी और पी० ए० साहब को आराम कुर्सी न मिलना ही परेशान कर रहा था। अपने बाप तक पर गर्मा उठे, अपनी पत्नी को बिस्तर बाधने और तुरन्त लौट चलने का आदेश दे दिया। उनका भतीजा किराए की आराम कुर्सी के लिए फर्नीचर की दुकानो पर भटका, पर न मिल सकी। हारकर वह लडका मेरे स्टूडियो पहुचा और रोने लगा "काका ने आराम कुर्सी के लिए आफत जोत रक्खी है।' मैंने नौकर के लिए एक हुक्मनामा लिखकर दिया, तब कही जाकर मामला थमा।

मेरे कहने का मतलब है कि ऐसे भी बहुत-से 'मैं' वादी घमण्डी होते हैं जो अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नही, अपने घर वालो तक को अपना तुच्छ गुलाम समझते हैं।

अब एक दूसरी कहावत और उसका एक दृष्टान्त भी सुनिए। कहावत है "मैं और मेरा मन्सुआ, तीजे का मुह झुलसुआ।" यही कहावत थोड़े रूपान्तर के साथ भी मैंने सुनी है जो इस प्रकार है "मैं और मेरा भतार, बाकी सब दाढी-जार।" इस कहावत की मिसालें तो खूब ही मिलती हैं, जहा चार औरतें मिली नही कि 'हम और हमारे साहब' की भागवत बचने लगती है। "हम ऐसे और हमारे साहब ऐसे! हमारे साहब को ये पसन्द है और हमारे साहब को ये ना-पसन्द है।" चार औरतें बैठी हो तो चारो अपनी ही अपनी सुनाएगी। कोई किसीसे कम नही, "मैं भी रानी तू भी रानी, कौन भरे कुए से पानी" वाली

कहावत अक्षरशः चरितार्थ होने लगती है। सबको अपनी ही शान-गुमान की चिन्ता रहती है— हमारे बच्चे बच्चे, औरों के लुच्चे। अपना पूत पराया धतिंगड़। मज़ा तब आता है जब फलानी ढिमाकी के बच्चों को बुरा बतलाती है और ढिमाकी फलानी के बच्चों को। इस दूसरी कोटि के 'मैं' वादियों में पहली कोटि के गुमानियों से बस इतना ही अंतर होता है कि वह केवल अपने ही को उच्च मानता है और यह लोग अपनी उच्चता में अपने साथ-साथ अपने पतियों या पत्नियों और बाल-बच्चों को भी शामिल कर लेते हैं।

घमंडियों की एक तीसरी कोटि और भी होती है—ये लोग अपनी या अपनों की बुराइयों को भी बड़ी बढ़ाई के रूप में पेश करते हैं। हिन्दी में एक कहावत है जो शर्तिया किसी सपूत की मां से अपने लाड़ले के सत्संगियों की प्रशंसा सुनकर किसी कपूत की मां के बखानों पर बनी होगी। कहावत है, 'मेरे लाल के सौ-सौ यार, चोर जुआरी और कलार।' अब बोलिए, दाद दीजिए इस 'मैं' की शान की, जो अपने बेटे के बुरेपन को भी शान से बखानती है।

इन 'मैं' वादी घमंडियों की एक कोटि वह भी होती है जो अपनी दीन स्थिति को नज़र अंदाज करके अपने पुरखों का वैभव बखानकर अपनी शान जतलाते हैं। ऐसों पर भी एक कहावत हिन्दी में बहुत उम्दा है। कहते हैं, "मेरे बाप ने घी खाया था सूंघो मेरा हाथ।" अब बोलिए, इस शान पर भला आप क्या कहिएगा। ऐसे मैं-मैं करने वाले लोग अपने मुंह मियां मिट्ठू भले ही बन लें पर दूसरे उनकी इज्ज़त दिल से कभी नही कर पाते। यह कहावत बिल्कुल सच है कि खुदी और खुदाई में बैर है। जहां इतना संकीर्ण आत्मप्रेम होता है वहां परमात्म भाव कभी उपज ही नहीं सकता। घण्मडी का सिर कभी-न-कभी नीचा होकर ही रहता है। इसलिए यह मैं-मैं पन हमे तो भई नही सुहाता, हम तो उस साधु-वाणी के कायल हैं जो यह कहती है :

हम वासी वहि देश के जाति वरण कुल नाहि,
शब्द मिलावा होत है, अग मिलावा नाहि।

इस भाव में तो मुक्त मन से सानन्द कह सकता हूं कि मैं ही हूं। मैं सर्वव्यापी हू। इसलिए सब तज, मैं भज। गीता में भी यही लिखा है।

घरवाली मुझे मूर्ख समझती है

बात आरम्भ करते हुए हमे तसल्ली केवल इसी बात की है कि हमसे पहले सुकरात, कालिदास और गालिब जैसे बडे-बडे लोग भी अपने-अपने घरो मे अपनी-अपनी घरवालियो के द्वारा मूर्ख माने जा चुके हैं। अभी औरो की तो बात ही क्या स्वय माता कस्तूरबा गाधी भी महात्मा जी से झुझला कर अक्सर यह कह दिया करती थी कि 'तुम क्या समझोगे इन बातो को।' यहा लगे हाथो यूनिवर्सिटी की शोध छात्राओ और छात्रो को भी उदारतापूर्वक यह 'टिप' दिए देता हू कि अगर वे हिन्दी ही नही सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के सतो-सूफियो की बाबत छानबीन करे तो उनके सामने यही तथ्य आएगा कि हर सन्त, सन्त बनने से पहले अपनी पत्नी के द्वारा मूर्ख साबित किया गया था। हाथ कगन को आरसी क्या, पिछले पैतालीस बरसो से मेरी घरवाली नित्य-नियम से दिन मे कई-कई बार मुझे यह जतलाने से नही चूकती कि मुझे दीन-दुनिया का तनिक भी शऊर नही है और मैं उल्लू ही नही निरा काठका उल्लू हू, जिसके आस-पास या दूरदराज से कभी अक्ल नाम की चिडिया अपने पखो की हवा से छूकर भी नही गुजरी है। यह सुनते-सुनते अब मैं रफ्ता-रफ्ता सन्त हो चला हू। इसके अलावा दूसरी ओर कोई गति ही नही, किया क्या जाय? सब जतन करके हार गया मगर हमारी श्रीमती जी तो सूरदास की 'काली कमरी' है जिसपै 'चढै न दूजा रग।'

एक बार सयोग से दो-तीन नगरो मे लगभग आस-ही-पास की तिथियो मे हमारे अभिनन्दनो और भाषणो का शानदार प्रोग्राम बन गया। उन दिनो हम अपनी पत्नी की निरन्तर प्रताडना से काफी दुखी होकर 'का तव काता' वाले शकराचार्य मार्का मूड मे थे। जब यह प्रोग्राम आए तो हमारी दिव्य-दृष्टि ने प्रत्यक्ष देखा कि भगवान् भोलानाथ ने अपने इस भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर यह मौका दिया है कि मैं अपनी पत्नी को साबित कर दिखलाऊ कि बाहर वाले मुझे कितना बडा बुद्धिमान और ज्ञानी पडित समझते है। मैंने सोचा कि अब की बार यात्रा मे इन्हे साथ ले चला जाय। मैंने कहा 'सुनती हो। इस बार मुरादाबाद और देहरादून का प्रोग्राम बना है तुम्हें मसूरी और हरिद्वार भी घुमा दूगा, साथ चली चलो।'

वे झुंझला पड़ीं, बोलीं : 'तुम्हें कुछ समझ भी है, बस मुंह उठाया और कह दिया कि चलो चलो। तुम तो पराए खर्चे से जाओगे और मैं अपने बच्चों का पेट काट के बुढापे में तुम्हारे साथ सैर-सपाटे को जाऊं—वाह, अच्छा ज्ञान सिखा रहे हो हमे।'

कोई और वक्त होता तो पत्नी से इतना संत बोध प्राप्त करके ही चुप हो जाता मगर उस समय तो मैं चूंकि उन्हें अपने महान व्यक्तित्व का बोध कराने पर तुला हुआ था इसलिए साम, दाम और भेद तीनों नीतियों से काम लेकर पक्के पालिटीशियन की तरह उन्हें पटा ही लिया : मैंने कहा : 'मसूरी में बैठ के अपन लोग सन् 31 में हुई अपनी शादी के दिनों की बातें करेंगे जब तुम मुझसे बात करने भी शर्माती थीं और फिर हरिद्वार मे हर की पैड़ी पर बैठकर तुम मुझे अपनी निर्लज्ज झिड़कियां सुना देना, तुम्हारा धरम करम सार्थक हो जायगा।'

खैर साहब, ले गये। मुरादाबाद मे दीक्षान्त समारोह था। मैं जब गाउन पहने जुलूस मे जा रहा था तो बस यही ध्यान था कि हमारी बीबी हमें किस नजर से देख रही है। दीक्षान्त भाषण देते समय हमें सच पूछिए तो स्नातक-स्नातिकाओं से अधिक इस बात की चिन्ता थी कि 'उन' पर हमारी विद्वता का रौब कैसा पड़ रहा है। जब जोरदार तालिया बजीं तो हम मच के नीचे सामने बैठी हुई अपनी पत्नी को इस तरह ताकने लगे कि मानो कह रहे हों . 'देखले बीवी अपने मियां का रौब रुतबा ! अब भविष्य में कभी मुझे मूर्ख और अपने आप को बुद्धिमान न मानना।'

मगर उसी शाम संभ्रान्त नागरिको के एक भोज में मुझे यह मालूम हो गया कि मुरादाबाद की महिला मण्डली के सामने मेरी कलई उतर चुकी है मेरी जीवन सगिनी के आसपास खडी हसती बतियाती हुई देवियो में से एक ने मेरी किसी बात के जवाब में टप से कहा कि 'जाइये भी, हमें सब मालूम हो चुका है। आप तो अपने कपड़े भी खरीद कर नही ला सकते। मिसेज़ नागर ही बेचारी आपकी सारी जरूरतों की चिन्ता करती हैं।'

चलिए मेरे सारे किए धरे पर यों पानी पड गया। सिर्फ घर ही में नही बल्कि बाहर भी घरवाली ने हमें बुद्धू और अपने आपको अरस्तू साबित कर दिया। हम विश्वामित्र के मंत्र का ध्यान करने लगे कि जाया ही घर है, वह जहां रहेगी वहीं घर भी रहेगा और घर रहेगा तो पत्नी अपने पति को बुद्धू और निकम्मा जाहिल व्यक्ति साबित करने से हरगिज न चूकेगी। 'नीम न मीठा होय सींच चाहे घी गुड से।' यह इंसानी खस्लत है कि नकटों के गांव मे किसी नाक वाले की आबरू बच नहीं सकती, इसलिए मैं यह सोचता हूं कि मैं शायद अकेला ही नही बल्कि सारा पुरुष समाज सभ्यता के आदिकाल से आज तक अपने-अपने घरों में यही सुनता चला आया है कि 'सैयां मोरा नादान जगत की रीत न जाने।'

इस नादान सैंया की आये दिन घर मे क्या-क्या दुर्गत होती रहती है इसका दुखड़ा कहां तक रोऊं। कभी-कभी तडप कर नरोत्तम कवि के सुदामा की तरह पत्नी से गुस्से में कहता हू कि 'सिच्छक हौं सिगरे जगको ना कह तू अब देत है सिच्छा।' मगर इस गर्वोक्ति के बाद जो तमाम ऊटक-नाटक घर मे होने लगता है उससे नजात पाने के लिए 'हैण्ड्स अप' मुद्रा मे हाहा खाते हुए यही कहना पडता है कि 'पत्नी शरण गच्छामि।' एक बार हम बाहर गये थे, वहा हाथ मे काफी पैसा आ गया। हमने सोचा घरवाली को प्रसन्न करने के लिए साडी ले ली जाय। चूकि हर रोज घर मे अपने ठगे जाने की बात सुनता आता हू इसलिए एक एक अनुभवी मित्र को साथ लेकर खरीदने गया। जब उसे लेकर घर आया तो पत्नी ने दाम पूछे। मैंने बतला दिए। वे भडक पडी : 'मैं हजार बार कह चुकी हू कि जब तुम्हें चीज खरीदने की बुद्धि नहीं है तो खरीदारी ही क्यो करते हो। तुम सवासौ दे आये मैं इसे यहा से बीस-पच्चीस रुपये मे ही लाकर दिखा सकती हू!'

'यह कभी हो ही नही सकता।' मैं तडप कर बोला. 'मैं जिसे साथ ले गया था वो पक्का अनुभवी खरीदार है। मेरा हितेच्छु मित्र।'

'अरे जैसे तुम वैसे ही तुम्हारे मित्र! आदमियो को औरतो की चीज खरीदने की अक्ल कभी आ ही नही सकती।' मैं ताव खा गया उन्हे चैलेंज दिया। उसी दिन शाम को घर पहुचने पर एक वैसी ही साडी और देखी, दुकानदार की रसीद भी देखी, शायद नब्बे या पिच्चानबे रुपयो की थी। मै भला क्या कहता—लगता है कि यह सारी पुरुष कौम ही औरत को देखते ही बुद्धू बन जाती है। हम अब बहुत भडक-भडक कर बुझ चले हैं। कवि साहिर लुधियानवी के शब्दो मे—

'चंद लम्हो के लिए शोर उठा डूब गया,
कुहमा जजीरे गुलामी की गिरह कट न सकी।'

(1975)

नये वर्ष के नये मनसूबे

नये वर्ष में हमारा पहला विचार अपने लिए महल बनवाने का है। बीते वर्षों में हम हवाई किले बनाया करते थे, इस साल वह इरादा छोड़ दिया क्योंकि हवा बुरी है। इस साल दो आफतें एक साथ फरवरी महीने में आ रही हैं—एक अष्टग्रही योग[1] और दूसरा इलेक्शन। इन दोनों का हुल्लड़ इतना है कि बहुत घबराकर, चचा गालिब की उक्ति में थोड़ी-सी तरमीम कर हम बार-बार अपने हजरते दिल से यही गुहार रहे हैं कि—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहां हुल्लड़ न हो
वोट मंगना हो न कोई ज्योतिषी कोई न हो
बे दरो दीवार का इक घर बनाना चाहिए
जिसमें कि कुण्डी न हो और पोस्टर चस्पां न हो

—दुखी हो गए हैं साहब! ठीक तरह से सवेरा भी नहीं हो पाता दरवाजे की कुण्डी खटकने लगती है। खोलकर देखिए तो कोई न कोई पार्टी वाले खड़े होते हैं। इनकी सूरतें देखते ही हमें फौरन मीयादी बुखार चढ़ आता है। चुनाव के दिनों में ये लोग वोटरों से बोलते नही बल्कि हिनहिनाते है: 'हेंहेंहेंहें' हम आपकी सेवा में आए हैं। हेंहेंहेंहें हमारा चुनाव चिह्न चूल्हा है। महंगाई में आजकल घर-घर के चूल्हे ठंडे हैं। हम अपने उम्मीदवार को उन्ही ठंडे चूल्हों का सुलगता लक्कड़ बनाना चाहते हैं। हेंहेंहेंहें आइए, हमारी मनोकामना पूरी कीजिए। लक्कड़ पार्टी को अपना क़ीमती वोट प्रदान कीजिए।" लक्कड़ पार्टी के बाद फक्कड़ पार्टी के बाद कंकड़-पत्थर पार्टी और फिर पार्टी पर पार्टी के लोग आ-आकर इतनी बार कुण्डी खटखटाते हैं कि हमारे दरवाजे की कुंडी ढीली पड़ गई है, उसे तोड़ने के लिए चोरो को अब छैनी-हथोड़े की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, महज़ एक झटका ही काफी है। यह तो कुंडी की दशा है, अब तनिक घर की दीवारों का मुलाहिज़ा फरमाइए—ऊपर से नीचे तक सब पार्टियों के पोस्टर ही पोस्टर चिपके हुए हैं। पिछली दीवाली पर कर्ज लेकर हमने दीवालों की पुताई

1. यह लेख 1961 में लिखा गया था जब अष्टग्रही योग की बड़ी चर्चा थी।

करवाई थी, वह कर्ज अभी चुका भी नहीं पाए और दीवालों की हालत यह है कि ···क्या कहूं। बाहर की दीवालें देख-देखकर हमें स्वयं अपने ही घर में घुसने को जी नहीं चाहता या घर में होते हैं तो बाहर निकलकर उनकी दुर्दशा देखने का साहस नहीं होता। कहीं गेरू से लिखा गया है—"फलाने को वोट दो।" उस पर तारकोल से क्रास निशान बनाकर नीचे लिखा गया है—"ढिमाके जी को वोट दो।" किसी ने 'वोट' शब्द के अक्षरों की प्रूफमिस्टेक सुधारकर उसे भद्दी गाली बनाकर मजा लूटा है। किसीने किसी पोस्टर के ऊपर अपना पोस्टर चिपकाकर हमारी दीवाल पर कागज पलस्तर चढ़ाया है। किसीने किसी का पोस्टर उखाड़ते हुए हमारी दीवाल की पपड़ियां उखाड़ डाली हैं। एलेक्शन वालों से प्रेरणा लेकर अष्टग्रही योग की आनेवाली प्रलय से घबराए हुए धर्मभीरुओं ने भी जगह-जगह लिख रक्खा है—"पांच फरवरी को प्रलय होगी, उससे बचने के लिए हमारे राम नाम या कृष्ण नाम संकीर्तन मंडल के सदस्य बनिए।" किसी ने लिखा है, "अष्ट-ग्रहों से सावधान ! अपनी जन्म-पत्री में मकर राशि का स्थान बिचरवाइए, असली ज्योतिष मारतंड पंडित नागनाथ जी से अपने अष्टग्रहों की शान्ति कर-वाइए। फीस गरीब-अमीर के जन-कल्याणार्थ हमने बहुत कम रक्खी है, सवा रुपया जन्मकुंडली दिखाई और सवा पांच रुपया अष्टग्रह शांति के, लिए जाते हैं।" यह हाल है और जग मे हुल्लड़ इतना है कि हम शांति से बैठकर कुछ सोच या कर ही नही पाते। इसीलिए हमने 'स्पेस' में बे-दरो-दीवार का एक महल बन-वाने की नये वर्ष के इस नये दिन को ठानी है। कम से कम वहां ठग ज्योतिषियों और नकली नेताओं से तो नजात मिलेगी।

हमारा दूसरा ठोस मनसूबा है कि इस नए वर्ष में हम अपनी सैकडो सदियों पुरानी मातृभाषा का मुह काला करके एक किराये की मादरी ज़बान को अपने घर में ला बिठाएंगे। ये मातृभाषा, साहब, बड़ी खतरनाक वस्तु है। इसमे हम जो भी कहते हैं, वह हमारी बे-पढ़ी लिखी जनता तक समझ जाती है। यह बहुत बुरी और राष्ट्रघातक बात है। हम अपने राष्ट्रीय मनसूबे की बाबत महान्-महान् बातें सोचें और वह भी अपनी देशी ज़बान में ? छि: छि: छि: ! हम अपने मन-सूबों का इतना बड़ा अपमान करें ? नहीं, नही, हरगिज़ नहीं। फिर हमारा शुमार पढ़-लिखे बाबुओं में क्योंकर होगा, जाहिल किसान, मज़दूरों और लालालूली लोगों पर हमारे रौब का सिक्का क्योंकर जमेगा ? इसलिए हमारा दृढ़ मनसूबा है कि नये साल में हम अपनी मातृभाषा का त्याग कर एक महान् त्याग का आदर्श उपस्थित करेंगे।

हमारा तीसरा मनसूबा बडा ही सांस्कृतिक है। हम अपने कमरे से नटराज, बुद्ध और गांधी की मूर्तियां हटाकर उसे नए सिरे से सजाना चाहते हैं। हमारा विचार है कि चीनी किंवदन्ती के गांधी पोषित तीन बंदरों वाले खिलौने को चार बंदरों

वाला बनाकर अपने कमरे में सजाएं। उनपर लिखा होगा : "बुरा देखो। बुरा बोलो। बुरा सुनो। बुरा करो।" हम एक सच्ची मिसाल देकर आपको इस नये 'मॉटो' (motto) का सत्य साबित कर दिखलाएंगे। अभी हाल ही में एक उपन्यास-लेखक हमसे मिलने के लिए घर पर पधारे थे। इन्होंने लगभग ढाई सौ उपन्यास लिख, छाप और बेचकर अब तक लगभग चार-पाच लाख रुपया कमाया है। साहित्यिक दुनिया मे इनका नाम कोई नहीं जानता, पर वे सफल और महान् उपन्यासकार तो हैं ही। कहने लगे : "हम आपको अपना गुरु उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार एकलव्य द्रोणाचार्य को मानता था। आपने हमें अपनी सामाजिक बुराइयो को देखना सिखलाया। इसलिए मैं अब बुरा ही बुरा देखता हू। मैंने अपने अमुक उपन्यास में एक बेचारी दीन-हीन सुन्दरी विधवा, दो बेचारी लोअर मिडिल क्लास की कालिज कन्याओ और एक बेचारी सुन्दरी स्टेनोग्राफर की दुःख दलित, हीन दशा का नग्न सत्यवर्णन किया है। एक चार सौ बीसिया सेठ अपने तीन कालेबाज़ारी सेठ मित्रो के साथ इन चारो रमणियो को चद-चांदी के टुकड़ों के वास्ते पतित करता है। मैंने अमुक प्रगतिशील आलोचक को ललकार कर कहा कि देखो मैंने यह प्रगतिशील चित्र अंकित किया है; तो वे बोले कि यह अश्लील चित्र है। मैंने भी उनकी शेखी का जवाब दे दिया। मैंने कहा, "जिसे तुम अश्लील कहते हो उस किताब की मैंने छह महीने मे अठारह हजार प्रतिया बेची हैं। मैंने अश्ली-लता मे समाज की बुराई ही देखी है। मैंने अपने समाज की अश्लीलता की सच्ची तस्वीरें पेंट करके आग उगलने वाले शब्दों में अश्लीलता पर घोर प्रहार किया है। यही सच्ची प्रगतिशीलता है।" हमने कहा, "सच है, आपको बुरा देखना फला—और सही अर्थ में आप प्रगतिशील भी बने क्योंकि कल तक आप प्रूफरीडरी करते प्रेसो मे चप्पलें चटकाते थे और आज बुरा देखने-दिखाने की बदौलत आपने स्वय प्रेस-मालिक मोटरशाली बनकर अपनी प्रगति की है।" जब वो चले गए तब हम अपनी हालत पर गौर करने लगे। समाज का भला देखने और लेखक बनने के फेर में हमने कमाने की कौन कहे अपने बाप-दादों की कमाई भी घर खर्च को 'डेफसिट' से बचाने में फूक डाली। जग के भले के पीछे अपना और अपने बाल-बच्चों का बुरा किया। लिहाज़ा क्या ये भला मनसूबा न होगा कि नये वर्ष में हम भी उन उपन्यास लेखक महोदय की तरह बुरा देखें, सुनें, बोलें और कहें? चूंकि ये मन-सूबा हमारा क्रांतिकारी है इसलिए सुननेवालों की नेक सलाह चाहते हैं। क्या बुरा है, हम सब अपने-अपने ही मे सिमट जाए, समाज को गोली मारें, अष्टग्रही योग के प्रताप से खडप्रलय आए या न आए मगर बुरा देखने, बोलने, सुनने और करने की तरकीब से दुनिया मे महाप्रलय शर्तिया आ जाएगी, यह निश्चित है।

हमारे कुछ मनसूबे बड़े निजी किस्म के हैं—जैसे कि हमारा गरम कोट फट गया है। पिछले कई वर्षों के कई नये दिनो पर हमने ये मनसूबा साधा कि इस

बार तो बनवा ही लेंगे पर न बनवा पाए। हाल की सर्दी मे कांपते कलेजे से हम यह सोचते रहे कि इस नये साल में कोट अवश्य सिलवाएंगे। देखिए पूरा होता है या नही। आज सुबह से ही हम ये मनसूबा भी बांध रहे हैं, नए वर्ष के नये दिन पेट भरकर गाजर का हलुआ खाए, मगर घरवाली नाक सिकोडकर ताना मारती है कि घर में नही दाने और आप चले भुनाने! भला ये लेखक का मुह और गाजर का हलुआ!—खैर, ये तो मनसूबा है और हम पहले ही अर्ज कर चुके कि मनसूबे केवल बांधे जाने के लिए ही होते हैं, पूरे करने के लिए नही।

कृपया दायें चलिए : एक घोषणा-पत्र

इस बार भी अगस्त के महीने में जब हमारी किताबों की रायल्टी की राशि चढ़ती महंगाई के मुकाबिले में एकदम औसत ही आई, तो हम अपने पेशे की आय रूपी अकिंचनता से एकदम चिढ़ उठे, हमने यह तय किया कि अब लिखना छोड़ कर कोई और धंधा करेंगे। मगर क्या करें, यह समझ मे न आता था। कई बिगड़े रईसो के बारे में सुना था कि जिन आदतों से वे बिगड़े थे, उन्हीमें नये लक्ष्मी वाहनों के पट्ठो को फसाकर, उनके पैसो के बल पर वे शान से अपनी जिन्दगी बसर कर सके थे। पर हमारी लत तो बुरी ही नही निकम्मी भी थी, यानी साहित्यिक बन गए थे। और यह साहित्यिकता आमतौर से रईस छौनों के मन-बहलाव की वस्तु ही नही होती, इसलिए हमारे वास्ते यह साहित्यिक इल्लत उस रूप में बेकार थी। दूसरा विचार आया कि पान और भग-ठंडाई की दुकान खोल लें। जगत्-प्रसिद्ध साहित्यिक नहीं बन सके तो न सही, 'जगत्-प्रसिद्ध तांबूल विक्रेता' का साइनबोर्ड टांगने का शानदार मौका मिल जाना भी अपने-आप में कम महत्त्वपूर्ण उपलब्धि न होगी। ठडाई के तो हमें ऐसे-ऐसे नुस्खे मालूम हैं कि शहर के सारे ठडाई वाले हमारे आगे ठंडे हो जाएंगे। सीधे गवर्नर से ही दुकान का उद्घाटन कराया जाएगा; उन्होंने अपने शासनकाल मे अब तक हर तरह के उद्घाटन कृपापूर्वक कर डाले हैं, बस पान-ठंडाई की दुकान ही अब तक नहीं खोली, खुशी से चले आएगे। धूम मच जाएगी। बस यही होगा कि चार लोग हमारा मजाक उडाएंगे कि नागरजी ने पान-ठंडाई की दुकान खोली है। अरे उडाया करें, 'आहारे-व्यवहारे, लज्जा नकारे।' जब इतने बड़े महाकवि जयशंकर प्रसाद अपने पैतृक-पेशेवश सुघनीसाहु कहलाने से न सकुचाए, तो पान-ठंडाई-सम्राट् कहलाने से भला हम ही क्यों शर्माएं !

भांग के गहरे नशे में इस स्कीम पर हम जितना ही अधिक गौर करते गए, उतनी ही हमारी आस्था भी बढ़ती गई। हमे यही लगा कि जैसी आस्था हमें इस व्यापार योजना से मिल रही है, वैसी किसी साहित्यिक योजना से अब तक मिली ही न थी। अस्तित्ववाद, शाश्वस्तवाद, रससिद्धांत, पूंजीवाद, लोकतंत्रवाद, भारतीय संस्कृतिवाद आदि हर दृष्टि से हमारी यह दुकान-योजना परम ठोस थी। इसलिए

मन पोढा करके हमने अपने दोनों लडकों को बुलाकर अपने मन की बात कही। छोटा बोला, "बाबूजी, मैं तो सपने में भी यह कल्पना नही कर सकता कि आप दुकानदार बन सकते हैं।"

हमने आस्थायुक्त स्वर मे उत्तर दिया, "बेटे, यथार्थ सदा कल्पना से अधिक विचित्र रहा है। जहा इच्छा है, वहा गति भी है। जवाहरलाल नेहरू का एक वाक्य है कि सफलता प्राय. उन्हीको मिलती है, जो साहस के साथ कुछ कर गुज-रते हैं; कायरो के पास वह क्वचित् ही जाती है।"

बडे बेटे ने कहा, "आप जैसे जाने-माने लेखक के लिए यह शोभन नही लगता, बाबूजी। यदि अपनी नही, तो कम से कम हम लोगो की बदनामी का ही खयाल कीजिए।"

हमने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया, "तुम लोगो का यह आबरूदारी का हौवा निहायत बुर्जुआ किस्म का है। हम घर आती हुई छमाछम लक्ष्मी को देख रहे हैं। तुम लोग यह क्यो नही देखते कि दुकान की सफलता के लिए हमारी साहित्यिक गुडविल, पान और भाग रसिया होने के सम्बन्ध मे हमारी अनोखी किंवदन्तियो-भरी ख्याति कितनी लाभकारी सिद्ध होगी। चार-पाच हजार रुपये महीने से कम आमदनी न होगी। तुम लोग चाहे कुछ भी कहो, हम यह दुकान जरूर खोलेंगे। हजार दो हजार की लागत मे लाखो का नफा। हम अवश्य करेंगे।"

लडके बेचारे हमारे आगे भला क्या बोलते। उठकर चले गए और जाकर अपनी मां के आगे शख फूका। तोप के गोले की तरह लाल दनदनाती हुई वह हमारे कमरे मे आई और बोली, "ये दुकान खोलने की बात आखिर तुम्हे क्यों सूझी?"

"पैसा कमाने के लिए।"

"पैसा तो खाने-भर को भगवान दे ही रहा है।"

"हमे ऐश करने के लिए पैसा चाहिए।"

"इस उमर मे! अब भला क्या ऐश करोगे! जो करना था, कर चुके।"

"ऐश का अर्थ सिर्फ औरत और शराब ही नही होता, देवी जी। हम कार, बगला, रेफ्रिजिरेटर, कूलर और डनलोपिलो के गद्दे चाहते हैं। प्राइवेट सेक्रेटरी हो, स्टेनोग्राफर हो, हाजी-हांजी करने वाले दस नौकर हाथ बाधे हरदम खडे रहें, तब साहित्यिक की वकत होती है आजकल। साले पेटभरू, चप्पल चटकाऊ साहित्यिक का भला मूल्य ही क्या रह गया है, भले ही वह तीस नही, एक सौ मारखां ही क्यो न हो! हम पूछते हैं, क्या तुम्हें चाह नही होती इस वैभव की?"

पत्नी शात हो गई, गम्भीर स्वर में बोली, "जब मुझे चाह थी, तब तो तुम यह कहते थे कि साहित्य का वैभव साहित्यिक होता है···"

"वो हमारी भूल थी। सोशलिस्ट विचारों ने हमारा दिमाग खराब कर दिया था।"

"पर मैं तो समझती हूं कि तुम्हारी दिमाग खराबी ही बहुत अच्छी थी।"

"तुम कुछ भी समझती रहो, पर हम तो अब पैसेवाले बनकर ही रहेंगे।"

"बनो, जो चाहो सो बनो, पर कान खोलकर सुन लो, मैं इस काम के लिए एक कानी कौड़ी भी नहीं दूंगी इस रायल्टी की रकम में से।" पत्नी अब तेज़ हो चली थी।

हमने भी अकड़कर कहा, "न दो, हम एक नया उपन्यास लिखकर एडवांस रायल्टी ले लेंगे।"

"जो चाहो सो करो। जब अपनी बनी तकदीर बिगाड़ने पर तुल ही गए हो, तो कोई क्या कर सकता है ! हिः, रुपये की दो अठन्नियां भुनाना तो आता नहीं, बिज़नेस करेंगे ये !" पत्नी तैश में आकर बड़बड़ाती हुई बाहर चली गई और बरामदे में खड़ी होकर गरजने लगी, "ये बिज़नेस करेंगे ! चार वर्ष पहले नरेन्द्र जी का लड़का परितोष, आया था। कितना छोटा था तब वह, फिर भी खेल ही खेल में इन्होंने जब उससे कहा कि हम-तुम साझे में पान की दुकान खोल लें, तो वह बोला कि नही चाचाजी, आपके साथ साझा करने में घाटा हो जाएगा। सारे पान और भांग तो ये और इनके यार-दोस्त ही गटक जाएंगे। न ये अपनी आदतें छोड़ सकते हैं और न मुहब्बत। बिज़नेस करेंगे मेरा कपाल !"

कविवर नरेंद्र जी के बेटे वाली बात ध्यान में आ जाने से गुस्से का चढ़ाव न चाहते हुए भी थमने लगा। यह झूठ नहीं कि ठंडाई और पान के शौक में ऐसे बहुत-से परिचित मित्र हमारी दुकान पर रोज़ आ जाएंगे, जिनसे पैसा वसूल करना हमारे लिए टेढ़ी खीर हो जाएगा। सोचा कि घरैतिन ठीक ही कहती है, इस धंधे में घाटा होने की संभावना ही अधिक है। धीरे-धीरे मन यहां तक मान गया कि हम न तो धंधा करने के योग्य है और न कोई नौकरी ही, चाहे वह बढ़िया ही क्यों न हो। अपनी अयोग्यता और अभागेपन पर झुंझलाहट होने लगी।

दूसरे दिन इतवार था। इतवार औरो के लिए छुट्टी और हमारे लिए सिर-दर्द का दिन होता है। अभी घड़ी में पूरे-पूरे साढ़े सात भी न बजे थे कि बेटी ने आकर मोहल्ले के कई व्यक्तियों के पधारने की सूचना दी। हमने सोचा कि शायद मध्यावधि चुनाव के सिलसिले मे किसी उम्मीदवार के नाम का प्रस्ताव लेकर आए होंगे। इस विचार ने मन को स्फूर्ति दी। सोचा, इस बार हम क्यो न खड़े हो जाए। पान की दुकान न सही, नेतागिरी सही, इन दोनों ही पेशों की आमदनी सदा इनकमटैक्स विभाग वालों की पकड़ से बाहर ही रहती है। इस विचार से एक बार फिर आस्था रूपी जीवनमूल्य की उपलब्धि हुई।

तब तक हाथ में अपना हुक्का उठाए हुए बड़े बाबू, नल्लू बाबू, पत्तो बाबू, सत्तो बाबू, सुनत्तो बाबू वगैरह-वगैरह ढब-बेढब नामों के चार-पांच शिष्ट जन पधारे। बड़े बाबू आते ही बोले, "पंडित जी, गली वाली नाली देखी आज आपने? गंगा-गोमतिया फ्लडियाया करती थी, अब साली नाली मे फ्लड आता है। ये गवरमेंट है साली।"

"आज पूरी गोबरमिंट है साहब, राज भी गोबरनर का है। हम तो कहते हैं कि इस बार मध्यावधि चुनाव मे इसे पूरी तरह बदल डालिए।" अपने भावी वोटर भगवान को जोश दिलाने की कामना मे हमने ज़रा नेता मार्का नाटकीय अंदाज भाखा।

"कहते तो आप ठीक ही हैं पंडित जी, मगर मध्यावधि चुनाव अभी चार-पांच महीने पड़े हैं, आप तत्काल की बात सोचिए। कार्पोरेशन मे किसी बड़े अफसर को फोन-वोन करके ये गंदगी ठीक करवाइए जल्दी से, अन्दर से मैनहाल उबल रहा है। बड़ी बदबू फैल रही है बाहर।"

खैर, किस्सा कोताह यह कि मेयर, डिप्टी मेयर, हेल्थ अफसर आदि को फोन करके हमने मेहतर दल को बुलाने मे सफलता प्राप्त कर ही ली और उस सफलता के तुफैल मे हमने भावी चुनाव मे खड़े होने का इशारा भी फेंक दिया। चार दिन मे धूम मच गई कि हम खड़े हो रहे हैं।

पत्नी फिर सामने आईं, "इलेक्शन लड़ोगे?"

"हां, अब मिनिस्टर बनने का इरादा है।"

"पैसा कौन देगा?"

हमने कहा, "बुद्धिजीवी जब अपना ईमान बेचता है, तो पैसो की कमी नही रहती।"

तभी लड़के आए, उन्होने पूछा, "आप किस पार्टी से इलेक्शन लड़ेंगे?"

हम बोले, "इस समय तो हमारी गुडविल ऐसी ज़बरदस्त है कि सभी पार्टिया हमे टिकट देना चाहती हैं।"

बड़ा बोला, "मगर इस समय तो इन सब पार्टियो की साख गिरी हुई है। इनमे से एक भी पूरी तरह सफलता नही पाएगी।"

हमने कहा, "सही कहते हो। हम बुद्धिमत्ता से काम लेकर अपनी पार्टी बनाएगे।"

"आपका मेनिफैस्टो क्या होगा?"

हम गौर करने लगे। अपना स्वार्थ साधने के लिए ऐसा मेनिफैस्टो बनाना चाहिए, जो औरो से अलग लगे और साथ ही पैसा मिलने के साधन भी जुट जाए। हमने कहा, "देखो, इनमे से कोई भी पार्टी इस बार बहुमत नही पाएगी। क्योंकि जनता सबमे अपना विश्वास खो बैठी है। और यहा के सेठ हमे पैसा भी

नहीं देंगे, क्योंकि इनमें से कुछ कांग्रेस के साथ हैं और कुछ जनसंघ के। इसलिए हमारा पहला नारा यह होगा कि भारत के जिन-जिन प्रदेशों में इस समय मध्यावधि चुनाव हो रहा है, उनमें स्थाई शांति और सुशासन लाने के लिए दस वर्ष तक पाकिस्तान, अमरीका और ब्रिटेन का सम्मिलित राज होना चाहिए। इससे हिंदू-मुस्लिम एकता और स्थाई शांति बढ़ेगी, तथा इन तीनों की तरफ से मुख्य-मंत्रित्व का भार हम संभालेंगे। इस त्रिदेशीय फार्मूले से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सारे मसले हल हो जाएंगे। इस तरह देश की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर निःशस्त्रीकरण की नीति को अमल में लाने के लिए एक रास्ता खुल जाएगा।"

"ठीक। और क्या होगा आपके मेनिफैस्टो में?"

विचारों की रोशनी से हमारी आंखें सहसा चौंधिया उठीं। हमने फौरन अपना धूप का चश्मा चढ़ा लिया और गंभीर पैगम्बरी स्वर में कहा, "हम अपरिवर्तनवाद का सिद्धांत चलाएंगे—हिंदू हिंदू रहे और मुसलमान मुसलमान। इन्हें एक भारतीय समाज हरगिज़ न बनने देना चाहिए, हम एक और अखण्ड भारत के खिलाफ हैं।"

"और भाषा?"

"भाषा का भूमि और संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं। पाकिस्तान, अमरीका और ब्रिटेन में से जो हमारे इलेक्शन का खर्च उठाने को राज़ी हो जाएगा, उसकी भाषा का समर्थन करेंगे। वैसे अपनी जनता की सुविधा के लिए हम अंग्रेज़ी को भारत की राष्ट्रभाषा···"

"क्या कहा? अंग्रेज़ी को राष्ट्रभाषा बनाओगे! अपने स्वार्थ के लिए हर झूठ को सच बनाओगे?"

पत्नी के तेहे पर हमने अपनी बौद्धिक मार्का हंसी का गुल खिलाया और कहा, "अरी पगली, नेता और वकीलों की सहायता ही इस बात पर निर्भर करती है।"

"झाड़ू पड़े तुम्हारी नेतागिरी पर। मैं आज से ही तुम्हारा खुला विरोध करूंगी।"

"अरे, पूरी बात तो सुन लो! देश में इस वक्त अन्न की कमी है···" हम बोले, तो पत्नी ने बात बीच में काट दी, "तुम्हें कौन खाने-पीने की तकलीफ है·· जो···"

हमसे आगे सुना नहीं गया। हमने अपना तेहा दिखाया, "ज़्यादा बक-बक मत करो···ज़्यादा बात करने से भूख भी ज़्यादा लगती है···जब तक भारत में औरतों के मुंह पर पट्टी नहीं बांध दी जाएगी, तब तक अन्न समस्या हल होने वाली नहीं है। अन्न मंगवाने के लिए हमने तय किया है कि एक टन गेहूं के बदले में हम एक नेता उस देश को सप्लाई करेंगे, जो हमें अन्न देगा। वह सौ टन गेहूं

देगा, हम भी नेता उसे देंगे ! वह हजार देगा, तो हम हजार देंगे।"

पत्नी मुह बाये सुन रही थी। मौका देखकर हमने और खुलासा किया, "हमारी पार्टी भ्रष्टाचार को शिष्टाचार के रूप मे मजूर करती है, बगैर तकल्लुफ के कहा राज चलते हैं ? घूसखोरी का तकल्लुफ हमारे राज मे बराबर बरता जाएगा ! रोजी-रोटी मागने वालो की खाल खिचवाकर बाटा वालो को सप्लाई की जाएगी, ताकि रूस से आने वाली जूतो की माग पूरी की जा सके।

"गीता का यह श्लोक हमारा सिद्धात वाक्य होगा और नारा भी···

स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।"

"दकियानूसियो ने इस श्लोक की रेढ मारके रख दी है। हम इसका सीधा, सरल और सही अर्थ अपनी धर्मप्राण जनता को समझाएगे।"

"क्या ?" पत्नी ने बिफर के पूछा।

"अरे भई, सीधी-सी बात है। हर आदमी का अपना-अपना धर्म है। चोर का धर्म चोरी करना, डकैत का डाका डालना, बेईमान का बेईमानी करना, इसी तरह गरीब का धर्म है गरीबी और अमीर का अमीरी। गरीब को अमीर का धर्म अपनाने की छूट नही दी जाएगी और न अमीर को गरीब का धर्म अपनाने की। हम इस धर्म-परिवर्तन के खिलाफ हैं। इस धर्मवादिता से जनसघ के समर्थक भी हमारी पार्टी मे आ सकते हैं···"

पत्नी हमारे विरुद्ध प्रचार करने लगी हैं। हमारा चुनाव का सपना डावाडोल हो रहा है और जनता के क्रोध से बचने के लिए हम इस समय बम्बई भाग आए है। क्रोध मे बराबर यही बात मन से फूटती है कि सत्यानाश हो इस जनता का, जो हमे नेता नही मानती।

शहर का अन्देशा

भाई साहब, हाथ कंगन को आरसी क्या, इस समय लखनऊ नगर में गली-दर-गली, घरों में, घरवालियों मे, हलवाई, तम्बोली, पंसारियों और सब्जी वालों, नौकर-चाकर, धोबी, जमादार-जमादारिन, लाला-ललाइनों में गर्ज़ कि घर-घाट, हाट-बाट में बेशुमार चलते-फिरते गज़ट देखने को मिल जाएंगे। आज पांच रोज़ से अफवाह गर्म है कि कलकत्ते बंगाल की तरफ मे चार बड़े लम्ब-तड़ग जवान आए है। वे रात में घरो के द्वार खटखटाते हैं, 'तार ले जाइए' की आवाज़ लगाते हैं और जो जाकर दरवाज़ा खोलता है उसे उन लम्बू जादूगरों में से कोई एक तमाचा जड़ देता है। आदमी चटपट मर जाता है। ये लम्बे बंगाली जादूगर किसी को लूटते नही, बस तमाचा मारकर जान लेते हैं।

इस अफ़वाह ने चलते-फिरते गज़टो को आजकल स्पुतनिक बना रक्खा है। क्या औरतें, क्या मर्द, सुबह से शाम तक जहा जाते हैं यही अफवाह फैलाते हैं।

आज दो रोज़ हुए, जरदन अधेरे ही बुढ़ऊ लम्बरदार हमारे पैर दबाने आते हैं। उनके पैर मीजने पर हम कुनमुनाए, लम्बरदार ने राम-राम की, हमारी नींद टूटी, लम्बरदार बोले, "मालिक, अब तो दुनिया मां रहब मुश्किल हुइगा है, भला यू कोनो इंसाफ की बात आय कि न जान न पहचान न दुश्मनी न अदावत, कुच्छौ नहीं, औ' लै के मनई का भड़ से चांटा जड़ि दिहिन औ' मनई का मारि डालिन।"

मैंने सोचा, कोई वारदात हो गई होगी। ब्योरा पूछा। लम्बरदार बोले, "अरे मालिक, एक दुई! —हम कहिति हय कि आज दुई रोज़ मां हियां सौ दुई सौ मनई का मार डालिन। सैकडन-हज़ारन का कानपुर मां मारि कै अब लखनऊ मां आए हैं।"

थोड़ी देर बाद पत्नी आई, "पूछा, अखबार में कोई खबर छपी है।"

मैंने कहा, "कोई क्या, खबरें ही खबरें छपी हैं, उसका नाम ही अखबार है।"

मेरी पत्नी चिढ़ उठी, बोलीं "तुम बात का जवाब देना ही नही जानते। रहने दो, मैं बड़े से पूछ लूंगी।"

मैं सोचने लगा कि सुबह लम्बरदार ने बेमतलब जिन चांटामार जान लेने-वालों की बात मुझे सुनाई थी वे स्वभाव में मेरी घरवाली या कहूं कि आमतौर

पर हर किसी की अधेड़ या बूढ़ी घरवाली से जरूर मिलते-जुलते होंगे। बड़े बेटो-बेटी वालियां, बहुओं दामादों, नाती-पोतों वाली सुहागिनें, अपने पतियों को बेबात की बात का नाच नचाना आरम्भ कर देती हैं।

आप ही न्याय कीजिए कि बिना जाने मैं यह कैसे समझ सकता हू कि वो कौन-सी खबर सुनना चाहती हैं। मगर उनके यों तुनुक के चले जाने पर कौन जबान खोले। यदि रस-शास्त्र की नायिका-भेदी दृष्टि से प्रौढ़-अधीरा कहू तो उनका मातृ-पद, सास-पद भृकुटियां तान-तानकर देखता है। बड़ी मुसीबत है, बंगाले के चाटेमार जानलेवाओं की अफवाह तो आज उडी, मैं तो कहता हू कि हर भाग्यवान घर मे सदा से ऐसी चाटेमार जानलेवा जादूगरनियां रही हैं। और लीजिए, मैं यह सब सोच ही रहा था कि श्रीमती फिर आ धमकी, झुझलाकर कहा, "बडा तो बड़ा जानलेवा है। वो अपने नाइट-शो सिनेमा के फेर में खबर को ही झूठी बताता है। मेरी हंसी उड़ाता है। तुम बता दो, खबर छपी है कि नही।"

उनका चेहरा देखकर मुझे दया आ गई। फिर भी थोडी छेड़खानी से बाज न आया। समझ नो गया था कि किस खबर से परेशान हैं, शर्लाक होम्स की बुद्धि से यह भी समझ गया था कि अभी महरी बर्तन मांजने आई है। उसी ने चाटेमार जादूगरो की खबर सुनाई होगी। मगर अनजान बनकर बोला, "भई कौन-सी खबर बतलाऊ। चीन की चिट्ठी पढ़कर सुनाऊं या द्विवेदी स्मारक की खबर···"

"महरी कहती है कि अखबारों मे खबर छप गई है।"

"कौन-सी खबर ?"

"तुम हंसी उड़ाओगे! जाने दो।"

मेरी पत्नी उठने लगी। मैंने देखा अपना मजा ही चला, तो चट से आचल थामकर कहा, "मैं अभी अखबार वालो को टेलीफोन करता हूं कि जिस चाटेमार जादूगर से पब्लिक परेशान है उसे मैंने गिरफ्तार कर रक्खा है।"

"हा-हां, वही कलकत्ते के जादूगर!" मेरी पत्नी का मुख-कमल खिल उठा, बोली, "मैं जानती थी, तुम्हे जरूर खबर होगी। महरी कहती थी कि रात मे साइकिल मे उतरते हैं और किसी का भी मुह नोच लेते हैं, बस आदमी मर जाता है।"

मैंने गम्भीर होकर कहा, "ये तो गम्भीर खबर सुनाई तुमने? अब तक कितने मरे?"

"ये तो मालूम नही हुआ। महरी कहती थी कि कल रात मेडिकल कालेज के सामने ही एक केस हो गया। फौरन अस्पताल में ले गए, डॉक्टरों ने कहा, मर गया। उसके चेहरे पर नाखूनों की खरोच के निशान थे।"

मैंने कहा, "अखबार में तो ऐसी कोई खबर नहीं। न हो तो रेडियो की खबरें सुन लेना आज।"

"तुम्हें कैसे खबर लगी ?" पत्नी ने पूछा।

"लम्बरदार ने कहा था, मगर तुम मुह नोचनेवाले जादूगर को बतलाती हो, वो चांटेमार बखान रहा था। तुम्हारे जादूगर साइकिल पर आते हैं, उसके साथ फिटिये जवान हैं जो रात मे आकर दरवाजा खटखटाते है तार ले जाइए।"

"हा ! हां ! महरी यह भी कहती थी कि तार वाले और डाकिये बनकर भी आते हैं।" पत्नी ने समर्थन किया।

मैंने कहा, "एक बात और है, लम्बरदार के चांटेमार जादूगर चार हैं और तुम्हारे मुह-खसोट कितने हैं, इसकी जरा अपनी महरी से पक्की-पोढ़ी खबर लाओ तो सरकारी तौर पर जांच कराऊ।"

"अब तुम तो हसी उड़ाने लगे।" मेरी पत्नी ने झेंपकर कहा फिर सोचती खड़ी रही, फिर कहा, "वैसे तो मुझे विश्वास है कि ये कोरी गप्प है। पर बड़ा जो रात को देर से आता है इसी से विश्वास नही होता।"

मैंने कहा, "देवी, तर्कशास्त्र के इस नए सूत्र के लिए ही तुम्हे डाक्टरेट मिलनी चाहिए।"

वे अपनी झेंप मिटाने के लिए मुस्कराईं और अपना बड़प्पन स्थापित करते हुए बोली, "तुम्हें याद है, एक बार जब लकडबग्घो की गप्प उड़ी थी तब किसी बाबा जी की एक पगली को लकडबग्घी कहकर कैसा शोर मचाया था।"

मैंने कहा, "मुझे तो याद है, तुम याद कर लो।"

इन चलते-फिरते गज़टों ने अक्सर अनर्थ तक कर डाला है। कई वर्ष पहले गोमती तट से पागलो का इलाज करने वाले एक बाबाजी के आश्रम से रात में एक पगली भाग निकली। गर्मी के दिन थे। वह भटकते-भटकते एक ऐसे गरीबों के मुहल्ले में पहुच गई जहां गली मे ही खाटें बिछाए अनेक परिवार सो रहे थे। पगली का एक बच्चा कुछ महीनो पहले मर चुका था, किसी स्त्री के पास लेटे हुए छोटे बच्चे को उसने अपना समझ कर उठा लिया और कसकर चूमने-दुलारने लगी। बच्चा रोया, मा की आख खुली, अपने बच्चे को किसी की गोद मे देखकर वह चीखी। पगली भागी, जगार हो गई, लोगो ने पगली से बच्चा छीन लिया, पगली को खूब मारा-पीटा, कोतवाली मे सुबह चार बजे लाकर बन्द करवा दिया। यह खबर मुह अधेरे ही दूर-दूर तक यों फैली कि एक लकड़बग्घी एक बच्चे को ले भागी। उसका कलेजा खा लिया। कोतवाली में पकड़कर आई है। उसके बडे-बड़े नाखून हैं इत्यादि। लगभग साढ़े चार बजे तक चौक कोतवाली के फाटक पर लगभग हज़ार आदमियो का मजमा लग गया। जितना ही लोगों से यह कहा जाए कि लकड़बग्घी नही एक औरत है, उतना ही लोगों का यह

विश्वास दृढ़ हो कि लकडबग्घी है, ये तो पब्लिक में सनसनी न फैले इसलिए खबर छिपा रहे हैं। मैं पगली को देखने गया, पहचान लिया और थाने वालो से सारी स्थिति भी बयान की। उन्होंने कानूनी स्थिति मुझे समझा दी। मैं जब बाहर निकला तो अनेक आदमियो ने घेरा, "लकडबग्घी है न ?" मैंने कहा, "नही, पगली है।" एक पढे-लिखे जवान मुझसे तन गए, "वाह लकडबग्घी है। इतने लोग झूठ कहते हैं ?"

मैंने कहा, "मैंने तो औरत ही देखी।" वे ताव खाकर बोले, "भेस बदल लिया होगा।" इसका जवाब ही क्या था, मैं चुप हो गया।

एक बार आपको याद होगा कि कुछ छोटे शहरो और गावो मे इजेक्शन और टीके लगाने वालो के खिलाफ इन चलते-फिरते गजटो ने यह खबर उडा दी थी कि ये बच्चो की आबादी घटाने के लिए उन्हे टीके लगाकर मार रहे हैं। इलाहाबाद के पास फूलपुर गाव मे कुछ कैमराधारी पत्रकार इसी धोखे मे पिट गए, उनके कैमरे छीन लिए गए, मथुरा मे एक बेचारा मलेरिया इस्पेक्टर जनता के गुस्से का शिकार होकर बुरी तरह पिटा। बल्कि मुझे तो अब भी यही अदेशा है कि इन चलते-फिरते गजटो की कृपा से किसी दिन रात मे कोई साइकिल-धारी लम्बा जवान धोखे मे जनता के क्रोध का शिकार न हो जाए। ऐसी खबर सचमुच शहर का अदेशा हुआ करती हैं। इन चलते-फिरते गजटो ने फिलहाल मेरे घर मे तो अदेशा पैदा कर ही दिया है, सर्दी की रातो मे अधेरा यो ही जल्दी होता है और मेरी पत्नी परेशान होने लगती है— 'अभी बडा नही आया कितने बजे है। खबर सच्ची है जी, तुम लोग मानो या न मानो। दिन मे धोबी आया वह भी कह गया, पास-पडोस ··"

मैंने कहा, "तुम लोग सब ये झूठी-मूठी खबरे उडाकर किसी दिन किसी बेगुनाह को शहर मे पिटवा दोगी, मुझे इसी का अदेशा है।"

चकल्लस

हमारे यहां चचा तीन तरह के माने जाते हैं, एक 'चचा बुजुर्गवार' होते हैं, दूसरे 'चचायार' और तीसरी किस्म के 'चचा बर्खुरदार' कहलाते हैं। इनमें मॉडल नम्बर दो के एक हमारे भी चचा थे। आज तीस-पेंतीस बरस पहले तक के ज़माने में हमारे लखनऊ शहर में तीन की पूछ सबसे बड़ी होती थी—जोगिये पीले साईं-शाहों की, बांकों की और पत्थरों की। मैंने 'कत्ताले-आलम जाने-जहाँ' क्लास को जानबूझकर इन वी० आई० पी०-यों की लिस्ट में शामिल नहीं किया। उनका तो रुतबा ही आला निराला था। हम शरीफों की मां-दादियों की कसक और जलन की गवाही में, अब तक उनकी बनाई पुरानी कहावतों और ढोलक के गीत मौजूद हैं; सर्द आहें भर-भरके कहा करती थी, "हां जी, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या ? घर की मुर्गी दाल बराबर और वो चकमक दीदा खाय मलीदा।" खुशी के मौकों पर गाए जानेवाले गीतों में 'नटनी घर जाना छोड़ो सनम' या 'बागन काहे को जाओ पिया, घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं। एड़ी अनार-सी मोर रही बहियां दोऊ चंपे-सी डार नवाऊं।' जैसे गीत कवित्त गाकर अपने लिए पिया बलमू की अदालत मे इलेक्शन-पिटीशन लड़ा करती थी।

तवायफों की बात ही कुछ और थी यानी कि यों समझें कि राजनीतिक तौर पर नवाबी को गए और अंग्रेजी आए तब तक चोहत्तर-पिछहत्तर बरस बीत चुके थे मगर लखनऊ में उस वक्त भी वेसवा वज़ीर थी और बटेर बादशाह। खैर, ये तो बात में एक बात यों ही निकल आई, वरना इनके ज़िक्रे नापाक का भला हम जैसे सफेदपोश शरीफों से क्या सरोकार—हम तो अपने चचायार की बात कर रहे थे; कि उनका जवाब नहीं था। वैसे वो कोई हमारे सगे चचा नहीं थे; कश्मीरी पण्डित थे। उनके सबसे बड़े भाई और हमारे पिता में ऐसी घनी-घना थी कि एक पान के दो टुकड़े करके खाते थे। एक जान दो कालिब थे। और चचायार जो थे वो हमारे क्लासफेलो हुए। उनमें लखनऊ के वी० आई० पी० यों के तीनों गुण मौजूद थे। वे साईं कलन्दरी, बांकपन और शायरी के काकटेल थे—नम्बरी चकल्लसी। शायर वो ऐसे थे कि जैसे मिस्त्री का काम जाननेवाला साइकल-

चोर होता है। औरों के कहे हुए अशआरो की चूलें भिडाकर चचायार अपनी शेर की खाट बनाते थे। उनका एक शेर अर्ज है, मुलाहिजा हो :

चकल्लसो की कमी नही 'चच्चा'
'ईश' अब बेहिसाब मिलते हैं।

(चचायार ने एक आम फहम प्रारितेरियत शब्द का प्रयोग किया था, हमने उसकी जगह ईश लगा दिया।)

खैर, चकल्लस की इस फिलासफी के समर्थक न तो हम पहले थे और न आज हैं मगर चकल्लस की किस्मो को हमारे चचायार ने पाँच प्रकार की माना था। (1) भात-भात की चकल्लस (2) बैठे बिठाए की चकल्लस, (3) मुफ्त की चकल्लस मोल लेना या बेकार की चकल्लस मे पडना। (4) खुदाई चकल्लस —और नम्बर पाच की चकल्लस का नाम है वही (ईश)—चकल्लस।'

हमारे चचायार को बैठे-बिठलाए की चकल्लस सूझती थी, कहना चाहिए उन्हें उसकी चुल उठती थी। इस चकल्लस शब्द मे जिन-जिन अर्थों की गूज उठती है उन सभी मे माहिर थे - यानी झगडा-फसाद कराने मे पूरे नारद मुनि, किसी भी तरह की झझटे मोल लेने मे या किसी तरह की झझट खडी करने मे हरदम 'आ बैल मुझे मार' वाली अदा मे तैयार रहनेवाले और चुहल-चकल्लस मे तो उनका पूछना ही क्या, वालिद जहानाबादी ही ठहरे।

एक बार एक मित्र की बरात मे गए थे। वापसी मे हम लोगो ने सामान, बुजुर्ग पार्टी और बकौल चचा शादी मे पाया हुआ 'चुगी का माल' यानी नई दुल्हन- यह सब तो एक कम्पार्टमेट मे जमा दिए और हम लोगो ने आजादी से एक दूसरे डिब्बे मे आसन जमाया। रेल के साथ चलने वाले टिकट चेकर साहब चूकि हमारे ही आदमी थे इसलिए पूरा स्वराज था। एक या दो स्टेशनो के बाद हमारे कम्पार्टमेट मे एक देहाती बरात की भीड घसी। हल्ले-हडबोग का तो पूछना ही क्या था। पुराने जमाने मे किले का फाटक टूटते ही जैसे दुश्मनो की फौजें अन्दर घसती होगी वैसे ही आज थर्ड क्लास मे मुसाफिर धसता है और शोर हूबहू ऐसा ही होता है जैसा सट्टे की इमारत के अन्दर होता है। खैर साहब, बरात किसी तरह अन्दर आई। नौशा सलामत के तौर-तेवर देखते ही चचायार बोले, "भई ये तो खालिस 'इश्टुडेंट' मार्का सैपिल है 'एस' को 'यस' और 'एम, एन' को 'यम यन' कहता होगा।"

हम लोग ताश फेंट रहे थे, देहाती नौशे मे जरा भी दिलचस्पी न दिखलाई; लेकिन अब इसका क्या किया जाए कि खुद नौशे साहब की शामत ही उस दिन आई हुई थी। कोट, पतलून, टाई पहने, फाउण्टेन पेन और चश्मे से चमाचम लैस, शादी के पन्ने चढे मौर को बगल मे टोप की तरह दबाए हुए अपने बरातियो के बैठने का इन्तजाम कर रहे थे—किसीसे कहते, इधर बैठो, किसीको उधर बैठाते,

किसी यात्री से कहते कि आपने टिकट लिया है मगर सीट तो रिजर्व नहीं कराई, आखिर हमने भी टिकट पर्चेज किया है—और यही सब करते हुए वे हम लोगों के पास भी जगह झटकने के लिए आ बैठे, फरमाया, "ए मिस्टर, आप लोग जरा पीछे खिसकिए, पैसेंजर्स बैठेंगे।"

हमने उस ओर कान भी न दिए। खाली हमारे चचायार ने रूमाल की नोक से अपनी नाक सुरसुराना शुरू कर दिया। नौशा जी ने दोबारा कहा, "आई एम आस्किग यू मिस्टर।" चचायार ने सिर उठाकर नौशे हुजूर की तरफ देखा। छींक की आमद-आमद मे उनके चेहरे की लकीरें उचक-बिचक रही थी। चचा उठके नौशे के सामने पहुंचे और उसके मुंह पर तड़ातड़ डबल दुनाली दाग दी। नौशाजी तिनगकर पीछे हटे लेकिन उनके कुछ कहने से पहले ही चचा बोले, "बरखुरदार, तुम्हें देखते ही छींकें आ गईं। शगुन अच्छा नही हुआ, लौट जाओ।" नौशा साहब अपने नाती-गोतियों के सामने भला हार मान के क्योंकर लौट सकते थे। अंग्रेजी मे अपने 'यक्सप्रसन्स पर यक्मप्रसन्न' दिखलाने लगे। चचा सीट पर खड़े होकर चिल्लाए, "भई, इस लडके का बाप कौन है!"

नौशा हुजूर, बोलते-बोलते एकाएक भौंकने लगे और इधर से उनके बाप भी पीछे की सीट से बोले, "हम हन।"

"भई, तुम्हारा लड़का अंग्रेजी बड़ी गलत बोलता है, इसको दस रुपै की चपरासगीरी भी न मिल सकेगी, तुमने बेकार शादी की इसकी।" चचा की बात और कहने की अदा ने लोगों को हंसा दिया, वे यात्री जो कि इस बरात के आ जाने से कष्ट पा रहे थे, नौशे की इस दुर्गत पर हंस उठे। हम लोगों ने उसकी अंग्रेजी की नकलें उतारी। तब तो फिर नौशे की बौखलाहट देखते ही बनी, कदम सहमे हुए पीछे हटते जाते थे और उनकी अंग्रेजी और हाथ आगे बढ़ते जाते थे। और उनकी तरफ के बड़े बूढ़े उन्हें समझा-बुझाकर ले गए और आई बात पार पड़ गई। हम लोग फिर ताश में रम गए। अगले स्टेशन पर नौशा साहब कब बाहर गए यह तो हममें से कोई न देख सका लेकिन एकाएक जब वे टिकट चेकर को अपने साथ लाकर हमारी ओर संकेत करके बोले, "ये लोग बगैर टिकट हैं" तब हमने उन्हें देखा। हमारे उड़ाए मजाकों के नहले पर अपने टिकट चेकर के दहले को लादने की खुशी में उनका चेहरा सन्तोष और शान से दमदमा रहा था। शायद हमारी आपसी बातचीत में उन्होंने सुन लिया होगा कि हममें से अनेक बगैर टिकट चल रहे हैं। लेकिन टिकट चेकर साहब ने जब हम लोगों को देखा तो उल्टे घूमकर उन्हीं से टिकट की फरमाइश कर बैठे। हम लोगों ने उनका फिर तो खूब ही मजाक उड़ाया। चचा ताश छोडकर नौशे के पीछे ही पड़ गए। मगर अब उसकी बोलती बन्द हो गई थी। फिर स्टेशन आया। नौशा फिर उतरा। चचा बोले, "अबकी साला पुलिस बुलाने गया होगा।" हमारा एक साथी उतरकर

उनकी टोह लेने गया और खबर लाया कि नौशा जी नौशी के कम्पार्टमेट के आगे खड़े होकर सिगरेट फूक रहे हैं। दूसरे-तीसरे स्टेशन पर नौशा फिर गए। हर बार हमारे गोयन्दे ने खबर दी कि अपनी दुलहिनी के डब्बे से टिककर खडे हैं। चौथे स्टेशन पर चचायार भी उनके पीछे-पीछे गए। हम उनके साथ हो लिए। चचा ने रेलवे पुलिस के एक सिपाही के हाथ मे चुपके से एक अठन्नी टिकाई और कहा कि मेरे भतीजे की बरात लौट रही है, और वो आवारा छोकरा दुल्हन की खिड़की के पास जा-जाकर गन्दी-गन्दी बातें बकता है, उसके मुह पर सिगरेट का धुआ छोड़ता है। जिस ज़माने मे दुअन्नी-चवन्नी का रेट था उस ज़माने मे अठन्नी टिकाने वाले का काम भला सिपाही क्यो न करता! जाकर उसी कम्पार्टमेट के पास खडा हो गया और ज्योही गाडी ने सीटी दी, उसने लपककर नौशे का हाथ पकड लिया।

नौशेराम सिपाही के साथ उलझते ही रह गए और गाडी चल दी। हमने कहा, "चचायार, तुमने उसे बुरा फसाया। बेचारा मुफ्त की चकल्लस मे फस गया।"

चचा बोले "बेटा, हमारी नीयत तो नही थी मगर क्या करें, हम तो पहले ही कह चुके हैं कि चकल्लसो की कमी नही क्योकि 'डेश' बेहिसाब मिलते है।

भात-भात की चकल्लस मे बम्बई के मुलुक का ध्यान करते हुए हमे सबस पहले भाषाई चकल्लस का ध्यान आ रहा है। हम भैयालैण्ड के आदमी, पहली-पहली बार जब यहा आए तो शब्द 'चेष्टा' की चकल्लस मे पड गए। एक बडे शिष्ट, सम्भ्रान्त और नए-नए परिचित महाराष्ट्रीय फिल्म डायरेक्टर सज्जन की किसी गम्भीर बात के जवाब मे हमने कहा, "मैं वचन देता हू कि एक बार चेष्टा अवश्य करूगा।" बेचारे भलेमानुस हकबकाकर मुझे देखने लगे फिर खिमियाकर बोले, "इसमे चेष्टा करने जैसी कोई बात तो मैंने आपकू बोलाच नई। वो मुह फुलाए हुए-से चले गए। बाद मे किसी ने कहा कि पण्डितजी तो अजब आदमी हैं। मैंने उन्हे एक सुझाव दिया तो बोले कि इसकी चेष्टा करूगा। दूसर सज्जन समझदार थे, हस पडे, बाद मे हमसे आकर कहा, पडितजी, अब किसी मराठी वाले के सामने चेष्टा शब्द न कहिएगा।" हमने पूछा, "क्यो ?"

वे हसकर बोले, 'आप तो हिन्दी मे चेष्टा शब्द कहकर के कोशिश कर रहे थे और वे मराठी मे समझे कि आप मज़ाक कर रहे हैं।"

हम चौक उठे मगर चौकने से भी आगे होनेवाली दुर्गत रुक न सकी। अवसर ऐसा हुआ कि हमारे हिन्दी के सीधे-सादे शब्दो मे किसी गुजराती, मराठी, तमिल या बगला-भाषी को अपनी-अपनी भाषाओ के अनुसार अश्लीलता दिखाई पटी। एक बार सत्तर चूहे खाके हज करने वाली एक बाई जी अपनी पवित्रता का नखरा दिखलाती हुई बोली, "ये भैया लोक को गन्दी-गन्दी बातें बकने मे लाज-शरम

मुलीज नहीं आती।" इसी तरह बंगाली-गुजराती आदि के बाज-बाज सरल शब्द हिन्दी वालों के कानों को भद्दे और अश्लील लगते हैं। इसलिए अर्ज है कि 'नेशनल इंटीग्रेशन' का ध्यान रखते हुए इन शब्दों की चकल्लस में इन्सान को जरा समझ-बूझकर ही पड़ना चाहिए। अगर देस-भेस की चाल समझ के न चले तो ईश्वर न करे, नसीबे दुश्मनां किसी का वही हाल हो सकता है जो हमारे एक पुराने मुला-काती बंगाली डॉक्टर साहब का हुआ था। उनका नाम उनके बाप ने राष्ट्रीयता के बहाव में देशबन्धु चितरंजनदास की स्मृति में रक्खा था देशबन्धुदास। बड़े होने पर देशबन्धु जी को अपने नाम के साथ जुड़ा 'दास' शब्द खटका, उसे निकाल फेंका। अपने साइनबोर्ड पर उन्होंने लिखवाया, 'डॉ० डी० बोन्धु'। मैंने उसे देख कर कहा, "डॉक्टर साहब, हमारे यहां बन्धु कहते हैं।" डॉक्टर बन्धु तन गए, बोले, "हिन्दी उच्चारोन गोलोत हॉय। हमरा बांगाली लोक बाड़ा-बाड़ा बिद्वान होता है। गोलोत नहीं बोलने शकता।" हमने उनके ये तेवर देखे तो समझ गए, नादान तो हैं ही, मगरूर भी हैं। फिर भी समझाते हुए कहा, "डाक्टर साहब, ये मसला विद्वानों का नहीं आम जनता के स्वभाव का है। मैं भी अगर अपने घर से बाहर निकलकर कहीं परदेस जाऊं तो मुझे भी वहां का चलन, रिवाज और बात-चीन समझनी होगी।" खैर, वे न माने और पब्लिक की जबान पर चढ़कर वे 'बोन्धु' से भोंदू हो गए।

अब वे दोष देते हैं कि हमने लोगों को सिखाया है। उनकी मा हमारे घर आकर खूब कोसाकाटी कर गईं। हम अजब हैरान कि अच्छा तमाशा है। ये तो भलमनसाहत में बैठे-बिठाए खामखां की चकल्लस में पडके होम करते हाथ जला लिए। लेकिन डॉक्टर भोंदू की नादानियों से हमने ये मॉरल निकाला—क्योंकि हर बात में मॉरल निकालना उन दिनों जरूरी समझा जाता था—कि जो न माने बड़ों की सीख, ठिकरा लेके मागे भीख। डॉ० भोंदू की तरह ही हमारे एक तिरंगे दिल्लीपाल माननीय भी सारे भारत से अपने नाम का प्रादेशिक उच्चारण कराने पर तुल गए थे, थे क्या अब भी तुले हुए हैं मगर क्या निवेदन करूं, जन-वाणी पर ऐसी छीछालेदर हो गई है उस माननीय नाम की कि—खैर होगा जी, इन तिरंगे माननीयों की चकल्लस में कौन पड़े। बस चलते-चलाते एक साहि-त्यिक चकल्लस और पेश कर दूं।

यह तो आप भी जानते ही हैं कि स्वतन्त्र भारत में कच्चे-उत्पादन के गृह कुटीर उद्योगों की बढोतरी से होड़ लेनेवाली कोई चीज यदि है तो केवल सेमि-नारों और विचारगोष्ठियों की फस्ली-बेफस्ली बेतहाशा पैदावार। खैर साहब, एक सेमिनार उर्फ विचारगोष्ठी हुई। पांच-छह शहरों के साहित्यिक जुड़े, किसीके चुन्न-पुन्न पर चाय-नास्ते का उम्दा डौल भी बैठ गया। पहले बहस नई कहानी पर चली और उसमें नई कविता के हवाले दिए गए। पुरानी कहानियों की चीर-

हरण लीला दिखलाने के बाद साहित्यिको ने तय किया कि अब कहानी छोड उपन्यासो पर विचार किया जाए। विचार होने लगा साहब, लेकिन विचार करते-करते यह अडचन आई कि जैसे नई कविता, पुरानी कविता, नई कहानी, पुरानी कहानी का बटवारा हो चुका है वैसे पुराने उपन्यास और नए उपन्यास का हिन्दुस्तान-पाकिस्तान अभी बट नही पाया। बेचारे विचारको ने बहुत बार कामू, काफ्का, सार्त्र जैसे साहित्यिक विटामिनो, कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च और प्रोटीनो की जोरदार नुमाइश की, तब तक धर्मयुग मे नए साहित्यिक विटामिन कीकेगार्द की खोज हो नही पाई थी उसका नाम रह गया—मगर इन सबसे भी जब नएपन का ममला हल न हुआ तो एक लालबुझक्कड ने नई बनाम पुरानी कहानी कविता के वजन पर मोटा उपन्यास बनाम पतला उपन्यास की बहस छेड दी। बस, बडी मुह-जोर मुहतोड बहस इसीपर चल निकली कि उपन्यास मोटा भला या पतला ? चारो ओर पतला-पतला की गुहार मच गई। लोग-बाग नारे लगाने लगे। पुराने उपन्यास मोटे हैं इसलिए अब असहनीय हैं। हमने जो यो साहित्यिक अक्ल का हाल पतला होते देखा तो यह तय किया कि अब इन सेमिनारो की चकल्लस मे हरगिज न पडेंगे मगर अब सोचते है कि यह सिद्धान्त ठीक नही, जब तक चार जगह की चकल्लस न देखे-सुने, यार की चकल्लस न पडे, तब तक आदमी भला क्या आदमी कहलाने के काबिल हो सकता है ?

जब बात बनाए न बनी !

बड़े-बूढ़े कुछ झूठ नही कह गए हैं कि परदेश जाएं तो ऐसे चोकन्ने रहें, जैसे बुढ़ापे में ब्याह करनेवाला अपनी जवान जोरू से रहता है। हम चौकन्नेपन क्या, दसकन्नेपन की सिफारिश करते हैं, वरना ईश्वर न करे किसी पर ऐसे बीते, जैसी परदेश में हम पर बीती, यानी हम साढ़े पांच हाथ के जीते-जागते मौजूद रहे और परदेश ने हमारे मुंह पर कानूनी तमाचा मारकर कुछ देर के लिए यह साबित कर दिया कि हम फौत शुद यानी कि मर गए।

शहर का नाम-ठाम तो न पूछिएगा, गई-गुजरी बात के लिए किसीको बदनाम करने की हमारी नियत नही। हां! इतना जान लेना ही आपके लिए काफी होगा कि वह नगर एक दूसरी भाषा बोलने वालों के प्रदेश मे है और हम पापी पेट से बंधे साल-भर के वास्ते वहां रहने गए थे।

मकानों की समस्या के विषय में तो आप सब जानते ही हैं, हमें भी बड़ी जिल्लत का सामना करना पडा। होटल सस्ता होकर भी बड़ा महंगा था। दाम भरपूर और प्रबन्ध का यह हाल था कि सुबह की चाय दस तकाजों के बाद दोपहर को मिलती थी, और दोपहर का खाना अगर आज मांगा गया है तो परसों शाम तक अवश्य पहुच जाएगा। खैर, बड़ी दौड़-धूप की; दफ्तरी कुर्सियो की मिन्नत-खुशामद की, और तकदीर ऐसी सिकन्दर सिद्ध हुई कि चार महीने बाद ही एक मकान हमारे नाम अलाट हो गया। हम बड़े प्रसन्न हुए, मकान देखने गए। एक छोटी-सी चाल थी, अर्थात् उस नई बनी हुई दो मंजिला इमारत में एक-एक कमरे वाले बीस घर थे। हम अपने कार्यालय के एक सहयोगी को लेकर उस जगह को देखने गए थे और जब देख ही रहे थे कि एक सज्जन, गोदी में अपने मुनुआं को लिए बड़ी अकड के साथ दाखिल हुए और अपनी भाषा में कुछ पूछा। हम तो खैर नए थे, लेकिन हमारे सहयोगी ने समझकर बात का उत्तर अंग्रेजी में दिया। धड़ाधड़ बात होने लगी।

उन्होंने पूछा—"आप इस घर को ले रहे हैं?"

उसने कहा—"जी हां।"

वे बोले—"लेकिन मैं आपको चेतावनी देता हूं कि इस घर में न आइए।"

"क्यों साहब ? क्या इस घर में भूत रहते हैं ?"

"भूत !" उन्होंने चौककर शब्द दुहराया, फिर बोले, "जी नही । यहां हम लोग रहते हैं ।"

"तो फिर क्या चोर-उचक्कों की बस्ती है ?"

हमारे इस प्रश्न से वे लाल-भभूका हो गए, कहा, "आप हमारा अपमान करते हैं । यहा सब शरीफ लोग रहते हैं ।"

हम विनम्र हो गए, दीनता से कहा : "यही सोचकर तो हम भी आ रहे हैं, परदेस मे शरीफो का साथ ही ठीक रहता है ।"

"लेकिन आप नही आ सकते । यहा सब घर-गिरस्ती वाले लोग ही रहते हैं ।" उन्होने कहा ।

"हम भी घर-गिरस्ती वाले ही है ।"

"लेकिन आप परदेसी हैं । हमारे यहा कोई परदेसी नही रह सकता ।"

हमारे दफ्तरी सहयोगी को यह बुरा लगा । वे भी परदेसी थे, यद्यपि हमारा-उनका प्रदेश भी अलग था और प्रादेशिक भाषा भी । वे गरमा गए, बोले . 'परदेसी होना तो कोई अपराध नही । आप भी रोजी-रोजगार से बधकर किसी और प्रदेश मे रहने के लिए जा सकते हैं । आपके प्रदेश के बहुत-से लोग हमारे यहा रहते हैं—वे भी तो आखिर वहा परदेशी ही हुए । ये बेजा बात है हम सब भारतवासी हैं, मानव है ।"

हमारे सहयोगी के इस तर्क से वे लुगी-बनियानधारी मुनुवा खिलावन सज्जन फिर भडके, कहा, "यह घर मैं अपने साले के लिए अलॉट करवाना चाहता था, लेकिन वेटिग लिस्ट मे उसका नाम दूसरे नम्बर पर हो गया और आपका पहले नम्बर पर । आप यदि अपनी टाग छोड दे, तो यह घर मेरे साले को मिल जाएगा ।"

हमने उनको समझाया, "देखिए सारी दुनिया को अपने पडोस मे बसाइए, मगर साले-ससुरे से सात कोस दूर रहना ही आपकी गृहस्थी के लिए शुभ होगा ।"

वे गरमा गए, कहा, "आप मेरे साले की इन्सल्ट करते है ।'

हमने घबराकर चटपट उत्तर दिया, "बारहा कहा कि मेरी मजाल नही जो अपमान कर सकू । और अगर आपको लगा हो कि मैंने अपमान किया हैं तो लिखित क्षमा माग लूगा, मगर हाथ आया घर नही छोडूगा । आपका जी चाहे तो मुझे हसकर या गाली देकर साला कह सकते है, मैं दोनो स्थितियो मे अहिंसा-वादी बना रहूगा ।"

जब उनका बस न चला तो हर मिडिल क्लास क्लर्क बाबू की तरह वे गरमा उठे । उन्होने निजी बात को फौरन राजनीतिक जामा पहनाते हुए कहा, "आप हमपर अपना साम्राज्यवाद लादना चाहते हैं । हमारे प्रदेश, हमारे नगर मे आकर

हमारे मकानो पर कब्जा करना चाहते हैं ? ऑल राइट, आई विल सी यू।"

हमने कोई ध्यान न दिया, यह, वह या कोई भी प्रदेश क्यो न हो ? सारे भारत मे क्लर्क बाबू पहले-पहल इसी तरह पेश आता है, पोलिटिकल भाषा मे बोलता है, 'आई विल सी यू' के जोम के साथ गुर्राता है और बाद मे हिल-मिल कर एक हो जाता है— बेचारा चलती चक्की मे पिसते हुए गेहू-सा क्यो न कुरं-कुरं बोले ?

खैर साहब, उस घर मे हम रहने लगे। हम बडी शराफत से रहने लगे। गृहस्थी के लिए आवश्यक और उचित चीजें लाने के साथ-साथ हम गणेश और बजरगबली के चित्र भी ले आए। घण्टी, दीपक, माला, स्तोत्रो की पोथी, धूप-बत्ती आदि भी लाकर सजा ली, ताकि लोग हमे भला मानुष समझें। ऊपर-नीचे पास-पडोस मे आते जाते नमस्कार कर अपना-उनका परिचय लिया-दिया। चार-पाच दिनो मे ही उनके साथ सवेरे-शाम राजनीति जमाने और अखबारी समाचारो पर बहसें होने लगी— बस एक वही साहब हमसे सीधा रुख न मिलाते थे, जिनका साला पडोसी न बन सका था। हमने उनकी चिन्ता छोडी, एक के नाराज होने से क्या बिगडता है ? हमने साले वाली बात भी औरो को बतला दी।

मगर एक पखवारा भी न बीता था कि हम अनुभव करने लगे, लोग-बाग हमसे कतराते है, अब नमस्कारो मे मुस्कान का चमत्कार नही रहा, 'वेल मर, हाऊ आर यू' का शगूफा भी न छिडने लगा, पडोसियो के बच्चे-बच्ची भी हमसे, यानी अपने नए 'अकल जी' से टॉफी मागने न आने लगे। हम घबराए कि आखिर माजरा क्या है ? कुछ ही दिनो मे हम एकदम अकेले पड गए। यानी कि लोगों ने नमस्कार का जवाब देना तक किसी हद तक बन्द कर दिया। हमने सोचा कि अवश्य ही कोई मालारजगी चाल है। पर क्या चाल है, यह पता नही चलता था। खैर, समूह मे सदा दो-एक नरम दिल के होते हैं, हमने एक पडोसी को बाहर ही पकडा, प्रेम मे रेस्त्रा मे ले जाकर कॉफी पिलाई, तब मालूम हुआ कि हमको उस चाल मे रहने वाले सरकारी बाबुओ के पोलिटिकल विचारो की जासूसी करने के लिए खास नई दिल्ली से भेजा गया है।

हमने फौरन ही इसकी काट शुरू की, मगर जासूस का डर पक्का बैठ चुका था, बात हाथ से निकल चुकी थी। हमारी सफाई से पडोसियो का सदेह और बढा।

चार दिन बाद हमारे कमरे के पिछवाडेवाले दरवाजे के पास एक मुर्गियो की ढावली दिखलाई पडने लगी। हम डरे कि जाने किसकी हो, खामोश रहे। मगर शाम को जब घर आए तो देखा कि चाल की सारी स्त्रिया अपनी भाषा मे गर्मागर्म शब्द छोकती मेरे ऊपर टूट पडी। हमने बहुत समझाया कि हमने मुर्गी-पालन कार्य कभी नही किया, हम घोर वैष्णव हैं, प्याज-लहसुन तक नही खाते, मगर

कौन सुनता है ? दूसरे दिन मकान मालिक भी गरमाता आया। हमने उसे लिख कर दिया कि मुर्गियां हमारी नहीं। मगर उसके बाद से हम सबकी नजरों का खटकता खार हो गए।

इसके बाद एक सप्ताह ही बीता था कि एक दिन सुबह सिपाही के साथ साले साहब को लेकर बहनोई साहब आ धमके। दरवाजा खटखटाया और हमारे कुण्डी खोलते ही सब लोग अन्दर घुस आए और बिना पूछेताछे धड़ाधड़ हमारा सामान फेंका जाने लगा।

हमने पूछा, "ये क्या माजरा है ?"

बतलाया गया कि जिसके नाम वैधानिक रूप से घर अलॉट हुआ है, वह रहने आया है।

हमने कहा कि घर तो हमारे नाम अलॉट हुआ है। उन्होंने नाम पूछा, हमने अपना नाम बतलाया। वे बोले, इस नाम का किरायेदार तो परसों इसी घर मे हार्टफेल से मर गया। सब लोगों की गवाही है। और हम कोई ऐरे-गैरे कल जबर्दस्ती इस घर में घुस आए हैं।

आप समझ सकते हैं, कि हमपर क्या गुजरी होगी। यानी अब तक जिन्दा थे और परसों मर चुके थे। हम, हम न थे बल्कि ऐरे-गैरे थे। हमारा सामान सड़क पर गया और घर साले का हो गया। हमारे बनाए कोई बात न बनी। फिर मे अपने-आपको जीवित साबित करने में ही सारा दिन लग गया।

कवि का साथ

आपने भी बडे-बूढों को अक्सर यह कहते शायद सुना होगा कि हमारे पुरखे कुछ यू ही मूरख नही थे जो बिना सोचे-विचारे कोई बात कह गए हों या किसी तरह का चलन चला गए हों। हम तो खैर अभी बडे-बूढे नही हुए, मगर अनुभवों की आचो मे तपते-तपते किसी हद तक इस तथ्य का समर्थन अवश्य करने लगे हैं। हमारे पुरखे सदा अनुभव का मार्ग अपनाते थे। सगी-साथियो का भला-बुरा, तीखा-कडवा अनुभव उठा लेने के बाद ही उन्होने यह सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक तत्व पाया कि---"ना कोई तेरा सग-संगाथी, हंस अकेला जाई बाबा।"

बडे गहरे तजुर्बे की बात है। और मैं तो सेर पर पंसेरी की चोट लगाकर यहा तक कहना चाहूगा कि 'बैर और फूट' का महामत्र भी इसी महा अनुभव की देन है। न रहे बास और न बजे बाँसुरी। लोगो मे यदि आपस में बैर-फूट फैल जाए तो फिर 'साथी-सगी' शब्द ही डिक्शनरी से निकल जाएगे---जब साथी न रहेगे तो साथ निभाने की जरूरत भी न रहेगी, चलिए जैजैराम-सीताराम, कोई टंटा ही न रहेगा। इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता के अलभ्य-सम्य स्वर्णिम युग की कल्पना शायद कभी साकार हो जाए। 'बैर और फूट' के मत्रसिद्ध देश मे जन्म लेकर, इतने बडे उपदेश के बावजूद हम-आप सभी संगी-साथियों के फेर में पडे रहते हैं। इसे कलिकाल का प्रभाव न कहे तो और क्या कहें।

हद हो गई कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के भयकर समर्थक प्रति वर्षो सरी पीढियो के नौनिहाल नौजवान भी दिन-रात किसी न किसी का साथ निभाने के पीछे अपने-आपको तबाह किए रहते हैं। लडकियो को सखा और सखाओ को सखियां भी चाहिए। मां-बाप प्रबन्ध करें या वे स्वयं—स्त्री-पुरुष दोनों को ही जीवन-साथी की चाहना भी अब तक हर वर्ष होती है। अगर यही तक बात थम जाती तो भी गनीमत थी, मगर एक जीवन-साथी के अलावा हर एक को काम के साथियों की आवश्यकता पडती है और मनबहलाव के साथियो की भी। काम और मनबहलाव दोनों ही अच्छे-बुरे होते हैं और साथ भी दोनों ही प्रकार के होते हैं। यहां तक तो दुभांत चलती है, मगर इसके बाद जहां तक साथ निभाने का प्रश्न है, वह चाहे अच्छा हो या बुरा, हर हालत में बड़ा कठिन होता है।

एक दिन मेरे एक परिचित सज्जन मुझसे अपना दुखड़ा रोने लगे। बेचारे बड़े भले आदमी हैं। पढ़े-लिखे औसत समझदार, भावुक और काव्य-कलाप्रेमी युवक हैं। इनके दुर्भाग्य ने इनके साथ यह व्यंग्य किया कि इनके बचपन के एक सहपाठी मित्र को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का कवि बना दिया। एक समय में वह स्कूलख्यात कवि थे; वह कुछ भी नहीं था।···इसी संदर्भ में इस सज्जन को कवियों के संग-साथ का चस्का लगा। उस दिन उन्हें उदास देखकर जब मैंने बहुत कुरेदा तो बोले : ''आपसे क्या कहें, साथ निबाहने के फेर में हम तबाह हो गए। और हमारा तो ठहरा कवियों का साथ, गोया करेले पर नीम चढ़ गया है। कच्चे धागों में मन को बांधकर जीने वाले इन कवियों-कलाकारों का साथ दुनिया-दिखावे के लिए तो अवश्य बड़े गौरव की बात है। बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय ख्याति के कवियों के साथ घूमते हुए देखकर लोनीबाग हमें भी पांच सवारों में मानते हैं। मगर इनके बाद का हाल ?—अजी कहां तक कहें, मजबूरी यह है कि हमारे पास शेषनाग की तरह हजार दांतें नहीं हैं।''

हमारे एक कवि साथी एक बार एक बड़े दरबारी किस्म के कवि सम्मेलन में जाते समय हमारी नई घड़ी मांग ले गए। हम कोई धन्ना सेठ नहीं, हां, उम्दा चीजें रखने का शौक है। इसलिए धीरे-धीरे बचत के रुपये जोड़कर कभी-कभी अपनी मनचीती वस्तु खरीद लिया करते हैं। साढ़े तीन सौ रुपये का नया माल अपने कवि साथी को टेम्परेरी तौर पर भी सौंप देने मे हमें संकोच हुआ। भले ही हमें उनकी नीयत पर शक न हुआ हो, मगर यह भय तो था ही कि मूडी और लापरवाह स्वभाव के कवि जी मेरी घड़ी कहीं इधर-उधर रखकर भूल आएंगे और हें-हें करके बैठ जाएंगे, इधर हम बेमौत मारे जाएगे, ऊपर से जीवन-संगिनी महोदया की हजार अलाय-बलाय सहनी पड़ेगी। हमारा संकोच देखकर कवि जी के मन का एक कच्चा धागा टूट गया, तपकर बोले : ''तुम ! तुम बुर्जुआ हो, अपने एक कवि मित्र का गौरव नहीं सहन कर सकते। तुम चूंकि कविता नहीं कर सकते मगर घड़ी खरीद सकते हो, इसलिए मेरे मान-सम्मान को अपने पैसे की शक्ति से दबाना चाहते हो···।'' फिर तो, मित्रवर कवि ठहरे, एक जबान से सौ-सौ वार कर चले। हार कर मैंने घड़ी दे दी। फिर ··जिसका डर था वही हुआ। कवि जी ने आकर कह दिया कि घड़ी खो गई। सुनकर जब मेरा चेहरा उतर गया तो वो गरज कर बोले : ''मैं ब्लड बैंक में अपना खून बेच-बेचकर चाहे क्यों न जमा करूं, मगर साढ़े चार सौ रुपये कहीं से भी लाकर तुम्हारे मुंह पर फेंक जाऊंगा। तुम महा नीच हो, मेरे जैसे महान् कवि के मित्र कहलाने के योग्य नहीं। आते ही तुमसे यह तो पूछा न गया कि कहो मित्र तुम्हें वहां कैसा यश मिला ? बल्कि अपनी ही घड़ी का रोना रोने बैठ गए।'' जोश में आकर कवि जी कहते चले : ''तुमने—तुमने अपनी घड़ी खो जाने की कचोट को एक बार भी मेरे

अन्तरतम में, मेरे मर्मस्थल में टटोलकर नहीं देखा और मुंह लटकाकर बैठ गए। तुम्हें क्या मालूम कि उसके खो जाने की पीड़ा से तड़पकर मैंने एक कविता लिख डाली है अगर मालूम होता तो तुम्हें अपनी घड़ी के खो जाने पर अभिमान होता। लो सुनो, तुम्हें अपनी कविता सुनाता हू .

मेरे मित्र की घड़ी,
जाने कहां गिर पड़ी।
निर्धन मित्र के जाने कितने अरमानो
से अड़ी
बडी मुश्किलों से खरीदी हुई घड़ी—
जाने आज किस भाग्यवान के हाथ पडी—
किसकी कलाई पर जड़ी ?
मेरे मित्र की घडी।"

यां घडी खोकर, साहित्य में उसके अमर हो जाने के गौरव से ही सतोष कर मुझे बैठ जाना पडता तो भी चुप रहता मगर छह-सात महीने बाद मैंने अपनी वही घडी एक दिन दावत मे कवि जी की कलाई पर बंधी देखी। उस पर मेरी दृष्टि पडने का आभास पाते ही वो झट मुस्कराकर बोले : "देखो, मैंने भी तुम्हारी जैसी घडी खरीद डाली।" कलेजे पर पत्थर रख, साथ निभाने की चेष्टा से भर उठने का नाटक करते हुए मुस्कराकर कहा : "बधाई।"

हमारे साथियों मे अगर एक ही कवि होता तो भी बचत थी, मगर यहा तो जन्मपत्री मे ऐसे ही ग्रह पडे थे। मेरे बचपन के साथी एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कवि इस नगर मे पधारने पर इस गरीब की कुटिया को ही अपनी चरणधूलि से पवित्र करते हैं कि "मैं किसी बडे होटल या बडे आदमी के बंगले में ठहरने से कहीं अधिक अपने इस गरीब सहपाठी के यहां ठहरना पसन्द करता हूं।—भले ही इसके यहा ठहरने मे मुझे बहुत-से कष्ट होते हों।" कवि महोदय यह कहकर अपने प्रशसकों से भरे दरबार मे बड़े प्रेम से हमारी ओर देखते हैं। सिवा इसके कि अपने महान् गौरव और सौभाग्य के कुए में धम्म से कूद पड़ें और कर ही क्या सकते है। महाकवि जी और उनके प्रशंसकों की खातिर करते हमारा बंक-अकाउण्ट खुश्क हो जाता है—मुर्गा अपनी जान से जाता है और खाने वाले को स्वाद नही आता। जो भी हो, साथ तो निभाना ही पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय कवियो के अलावा कई आल इंडिया स्टार-कवि भी मित्र हैं, इनके गलो पर लाखों सुननेवाले और सुननेवालियां निसार हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी ऐसी धूम मचती है कि क्या बखान करें।

इनके घमड की थाह हम आज तक न पा सके, ये लोग आपस मे ही एक-दूसरे को मुनगा समझते हैं। मजा तब आता है जब कवि सम्मेलन समाप्त होने

पर इनके चहेते ऑटोग्राफ लेने के लिए इनके चारों ओर गिद्धों की तरह गोल बांधकर जुटते हैं। कनखियों से हर कवि मुड़कर देखता है और तौलता है कि प्रशंसकों से किसका पलड़ा भारी है। फिर बाहर निकलकर शेखियां बघारी जाती हैं। एक कहता है, मैंने पचास ऑटोग्राफ्स दिए, दूसरा यह सुनकर भला चुप कैसे रहे, बोल उठता है, मैंने लगभग अस्सी-नब्बे ऑटोग्राफ्स दिए और फिर, उसके बाद घबराकर, जान छुड़ाकर भागा। अपने-अपने शिष्यों और निकटतम प्रशंसकों के सामने स्टार-कवि का बस इतनी शेखी बघार देना बहुत काफी हो जाता है। शिष्य फिर ले उड़ते हैं, इस हद तक ले उड़ते हैं कि चोंचें लड़ जाती हैं, आपस में जूतमपैंजार हो जाता है। ऐसे मे बीच वाले की बड़ी मरन होती है—किसको क्या समझाए ? हर स्टार-कवि अपने को कुतुबमीनार से कम ऊंचा नही समझता और मध्यस्थ से चाहता है कि वह उसे दूसरे मे कम अज़ कम पौन इंच तो लम्बा मान ही ले। ऐसों का मध्यस्थ बनकर बतलाइए कि हम किसका साथ निभाए और किसका न निभाएं ?

शनि और लक्ष्मी की लड़ाई मे मध्यस्थ होकर वीर विक्रमाजीत पर क्या कुछ न बीती ! हम पर भी बीत चुकी है। खैर, अपनी क्या कहूं !

एक बार बाहर की दो संस्थाओ ने आपस की होडाहोडी में एक ही दिन मे दो कवि सम्मेलन आयोजित किए। दोनों ने एक-एक स्टार-कवि को आमंत्रित किया। सितारे बस इसी को लेकर आपस में टकरा गए कि किसके कवि सम्मेलन में, किसके नाम से ज़्यादा भीड़ जमी। बात इतनी बढ़ी कि दोनों कवि अपनी मान-प्रतिष्ठा भूलकर आपस में ले-दही और दे-दही पर उतर आए। खैर, किसी तरह तत्तोथम्मो की गई और यह तय हुआ कि दोनों स्टार मिलकर नगर के एक प्रतिष्ठित अधिकारी के यहां कवि गोष्ठी मे जाएंगे, वहां दोनों का कविता-पाठ और सम्मान होगा, फोटो भी खिंचेगी। खैर साहब, अधिकारी के घर का मामला था बगैर लड़े-भिड़े कवियों ने अपनी-अपनी कविताएं सुनाईं। हां, अपने-अपने प्रशंसक दल के छुटभैये कवियों को दोनों साथ ले गए थे जिससे एक की 'वाह-वाह' दूसरे से कम न हो। इसके बाद फोटो खिंची। फोटोग्राफ में बीच की कुर्सी पर बैठने वाला विशेष सम्मान का पात्र माना जाता है। अधिकारी महोदय सतर्क थे। उन्होंने दोनों कवियों को बीच में, अगल-बगल बराबर की कुर्सियों के साथ बिठलाने की व्यवस्था की थी मगर उनकी प्रशासनिक चतुराई की उडान से भी ऊंची अधेड़ जवान स्टार-कवियों की योजना-बुद्धि पहुंची। दोनों ही स्टार-कवि इस ताक में थे कि मध्यमूर्ति के रूप मे वही प्रतिष्ठित हों। अधेड़ कवि जी इस सम्बन्ध में अपनी योजना कारगर करने में सफल हो गए। जवान कवि जी ने अधेड़ कवि जी की इस चाल को नोट कर लिया। चेले दोनों के साथ थे। फोटो खिंच गई। उसके बाद गोष्ठी विसर्जित हुई। बाहर आकर जवान कवि जी ठठा

कर हंसे : "वो समझता होगा कि वह बीच में बैठा है। जब फोटो देखेगा तो उसे मालूम पड़ेगा कि बीच की कुर्सी पर मैं बैठा हूं।" इसके अन्दर रहस्य यह था कि जब अधेड कवि ने एकमात्र अपने को बीच मे लाने के लिए चुपके से अपने एक चेले के कान मे किनारे वाली एक कुर्सी हटा देने का मंत्र फूक दिया; और ऐन मौके पर दो-दो कुर्सियां चुपके से बढवा दी और कुर्सियों के भूखे दो छुटभैये अफसर उन पर चट से बैठ भी गए। इस कुर्सी क्रम में चतुर जवान कवि जी बीच की कुर्सी के अधिकारी हो गए। समझ मे नही आता कि विकट कहू या ओछी, परन्तु ऐसी अहताबालो का साथ निभाना बड़ा ही कठिन होता है।

और सुनिए, आपको एक रोमांटिक कवि का किस्सा सुनाते हैं। प्रेम करना कवियो का जन्म-सिद्ध अधिकार है। भले ही कोई देवी जी उनसे प्रेम करें या न करें, भले ही कवि जी का चौखटा सुन्दर न हो, मगर वो सदा यही समझते हैं कि हर स्त्री उनपर आशिक हो जाती है। एक कवि महोदय हमारे यहां आया करते थे। हमारे कमरे की खिडकी के सामने पडोसवाले घर की खिडकी पडती थी। कवि जी ने एक दिन हमारी पडोसिन को देख लिया, बस उसके बाद तो उन्होने आफत ही ढानी शुरू कर दी। वे रोज़ आते, खिडकी के पास बैठते, ज़ोर-ज़ोर से बातें करते। कवियो की बातो मे सिवा आत्म-प्रशसा के और तो कुछ होता नही, अपनी तारीफो के पुल बांधते, अपनी प्रेम-कविताएं गा-गाकर सुनाते, सकेत के शब्द फेंकते। हमारी पडोसिन बेचारी बडी भली महिला थी। हमने कई बार कवि जी को समझाया। वो तमक कर बोले : "तुम क्या जानो जी। मैं दावे से कह सकता हू कि कैसी भी सती-साध्वी हो, साक्षात् स्वर्ग की देवी ही क्यो न हो, मेरे प्रेम-पाश से बचकर कोई स्त्री कही जा ही नही सकती। मैं प्रेम की टेक्नीक का मास्टर हू, मास्टर।" इस तरह कवि जी अपनी करनी से बाज़ न आए। पड़ोसिन महिला ने हमारी गृहलक्ष्मी से उनकी शिकायत की। श्रीमती जी सत्याग्रह करने पर तुल गईं कि इस कवि का घर मे आना-जाना बद करो। हम बड़े धर्मसकट मे पड़े—कवि साथी का साथ निभाए या जीवन-साथी का। कवि जी को यदि रोकते हैं तो बाहर जाकर वे अपनी करतूत तो कहेंगे नही उल्टे हमारी झूठी बदनामी ही जगह-जगह करते फिरेंगे। एक बार पहले भी हम इनसे भुगत चुके थे। डाकिया सौ रुपये का मनीऑर्डर लेकर आया। हमारे ससुर साहब ने कुछ सामान मगाने के लिए वह रुपया भेजा था। यही कवि-साथी उस समय वहां बैठे थे। हम मनी-ऑर्डर फॉर्म पर दस्तखत करने मे व्यस्त हुए और कवि जी ने डाकिए के हाथ से नोट लेकर गिनना आरम्भ किया। गिनकर उन्होने वे नोट अपनी जेब मे ऐसे इतमीनान से रक्खे मानो वे उनके लिए ही आए हों। हम बड़े घबराए, उनकी खिरौरी करने लगे। कवि जी बोले "मेरा मूड खराब मत करो जी। देखते नही, कैसी घटा उमड़ी है, कैसा सुहावना मौसम है।" हमने भी इतनी बड़ी रकम को

हाथ से यों न जाने देने का निश्चय कर लिया, एक बार कवि-मित्राई निभाने में घड़ी से हाथ धो ही चुके थे। हमने जबर्दस्ती रुपया छीन लिया। कवि जी तब से आज तक हर जगह यही कहते फिरते हैं कि अपने घर बुलाकर इस व्यक्ति ने मेरी जेब से सौ रुपये के नोट जबर्दस्ती निकाल लिए। यही तक नही, उन्होने एक कविता भी लिख डाली और भूमिका बांधकर वह कविता हर जगह सुनाते थे। इसी कारण से हम अपने इन रोमांटिक कवि-साथी को घर से निकालते हुए डर रहे थे। परन्तु हमारी पत्नी ने उन्हे घर से निकालकर ही दम लिया।

इन घटनाओ से आप स्वयं ही सोच देखिए कि कवि का साथ निभाना कितना कठिन होता है।

'बैर और फूट' के तत्व-दर्शन कर पाने लायक दृष्टि मैंने इन सज्जन को दे दी है; यदि अमल मे लाएगे तो सुख पाएगे। हरि ओम् बैर फूट तत्सत।

बुरे फंसे एक बारात में

फसने-फसाने के मामले मे हमारा अब तक यह दृढ़ विश्वास रहा है कि लोग या तो बदफेली मे फसते हैं, या राजनीति की गुटबंदियो मे। इसीलिए मैं हमेशा ही इन दोनों चीजों से बचता रहा हू। यह बात दूसरी है कि इन लतों मे खुद फंसने के बजाय दूसरो को फसाना, भुस मे आग लगाकर जमालो की तरह दूर से तमाशा देखना ही मेरी जिन्दगी का मकसद···मेरा पेशा है।

फिर भी कइयो के मतानुसार हम कई चीजों मे गले तक फसे हुए हैं। मसलन, मेरे एक सन्यासी हो जाने वाले काका, जिन्होने एक मोक्षस्वरूपिणी चेली को फास रक्खा है, और जो अपनी अतरात्मा मे अटकी हुई योग की फांस निकालने के लिए रात-दिन अलख के बजाय गाजे की चिलमे जगाने के लिए अपने चिमटे से धूनी की आग कुरेदा करते है, कहा करते हैं कि खानदान मे एक मैं ही कपूत हू जो घर-गिरस्ती के माया-मोह मे फसा हुआ हू। अपने महाजनो की धारणानुसार मैं कर्ज मे फसा हुआ हू, डाक्टरो का कहना है कि खासी की फांसी ने मुझे फास रक्खा है, और मेरी पत्नी समझती है कि मेरी नजरें कही और फसी हुई है।

परतु मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि इनमे से एक भी चक्कर मे मैं नही फसा। घर-गिरस्ती मे तो आज तक नही फसा, बल्कि असलियत यह है कि घर-गिरस्ती ही मुझसे फसकर अपना करम फोड चुकी है। बीवी और बाल-बच्चे नित्य नियम से आधा फाका कर मेरे नाम को रोते हैं, और मैं औरो की महफिलो मे अपने हलुवे-माडे मे तर रहता हू। कर्ज मे इसलिए नही फसा कि तय कर चुका हू कर्ज कभी अदा नही करूगा। जो महाजन भी हमसे फसा, उम्र-भर अदालत की गलियो मे चक्कर काटता रह गया·· कभी एक धेला भी वसूल न कर सका। खासी एक ऐसा आसान रोग है जो महज गले का खटका दबाने ही पैदा हो जाता है, इसलिए मैं अब भी लोगो को अपने से दूर रखना चाहता हू, खासखास कर थायसिस का मरीज़ बन जाता हू। और पत्नी की धारणा तो, गगा उठाके कह सकता हू कि एकदम निर्मूल है। मैं पहले ही अर्ज कर चुका हू कि बदफेली और राजनीति की गुटबन्दिया, ये दो ऐसे फदे हैं जिनमे मैं दूसरो को

फंसाता हूं, खुद कभी नहीं फंसता। आप इसीसे अनुमान लगा लीजिए कि दफा चार सौ बीस का जुर्म करने वाले मुनाफाखोरों के युग में मैं या मेरे जैसे आदमी समाज के लिए कितने उपयोगी होते हैं। ऐसा समाजोपयोगी जीव सदा एक प्रकार का दार्शनिक होता है···निर्मम, निर्लिप्त, निरभिमानी। मैं भी ऐसा ही हू, जल में कमल की तरह रहता हूं, कभी किसी दलदल में नहीं फंसा। मगर मसल मशहूर है कि ईश्वर किसी का गुमान नही रखता, सयाना कौआ भी कभी न कभी चिड़ी-मार के फंदे में फंस ही जाता है। मैं भी फंस गया, और फंसा भी तो एक बरात मे फंसा।

किस्सा यों है कि हमारे मुहल्ले के वयोवृद्ध सेठ छिदम्मीमल को अभी हाल ही में, होली से पांच-सात रोज़ पहले, अपने इक्यासी वर्ष के जीवन मे पाचवी बार विधुर होना पड़ा। सवा साल के अरसे में पद्रह बरस की सेठानी जी साठ से लेकर बीस बरस तक की उम्र वाले आठ बच्चो की मां बनी, दादी, परदादी, नानी, परनानी बनीं और भरे-पूरे कुनबे को छोड़ कर भरा-पूरा सुहाग लेकर संखिया के सहारे जग की वैतरणी को पार कर गईं। सेठ जी उसी समय से सबके आगे अपना दुखड़ा रोकर कहने लगे कि हाय, किससे होली खेलूगा, कैसे मेरा मन लगेगा।

सुनते हैं कि घरवाले उसी दिन से छिदम्मी सेठ को खुशामदियो और दलाल किस्म के आदमियों से बचाने लगे। इसका एक कारण है। जब तीसरी मरी तो छिदम्मी सेठ पिछत्तर पार कर चुके थे, उसके मरे के बाद ही माया-मोह से मन हटाकर अपने ठाकुरद्वारे में कीर्तन भी करने लगे थे···कि···तभी मेरे ही जैसे किसी समाजोपयोगी दार्शनिक ने उनकी नौजवानी के मोहनजोदड़ो को उनके काल-जर्जर हृदय की स्मृतियों से उबारकर एक बार फिर विगत वैभव के उत्साह से भर दिया। नतीजा यह हुआ कि तब से पूरे-पूरे दो बरस भी न बीतने पाए कि यह दूसरी मरी। लूटने वाले हज़ारो रुपया इसी बहाने से लूट ले गए।

और अब तो छिदम्मी सेठ को चस्का पड़ गया है, उनके कृष्णरूप मन को होली खेलने के लिए···न हो तो साथ बैठकर गुडिया खेलने के लिए ही एक राधा चाहिए। अधेड़ पतोहुओं और पोतों की जवान-जवान बहुओं को पंद्रह बरस वाली सासों और ददिया सासों से सख्त नफरत होती थी। अंतःपुर की राजनीति में पतंगे जैसी पुरखिन को लेकर आए दिन महाभारत होते थे। अविवाहित लड़के लड़कियों के क्षेत्र में भी जलन, कुढ़न और मानसिक विकृतियों की नई-नई लीलाएं नित ही हुआ करती थीं। इसीलिए इस बार जब आठों के मेले के दिन छिदम्मी सेठ अपनी सूतक में घुटी हुई खोपड़ी के ताज़े उगते हुए बालों पर खिजाब लगाकर छकलिया, दुपलिया और चूड़ीदार पाजामे से लैस हो, झुकी कमर को जवानों की तरह तानते हुए पतली छड़ी लेकर बाहर जाने लगे तो पोते ने राह रोककर

कहा, "बाबा, अब छकलिये-दुपलिये पर कोई नही रीझेगी, बुश्शर्ट और पतलून पहनकर बंदरिया बाग में घूमा करो। माशाअल्ला गबरू जवान हो···सड़क पर रीझनेवालियों की लाशें बिछ जाएंगी।"

बाबा ने बुरा माना। उन घरवालो को कोसने लगे जो उनका सुख नहीं देख सकते थे। इसपर बहुओ के घूघट से गोले बरसे। जवाबी हमले के तौर पर बाबा ने गदी गालियां बकना शुरू किया। यह धमकी भी दी कि अपनी जायदाद सिरी ठाकुर जी के नाम कर जाएगे, घरवालो को रुलाकर छोडेगे।

प,ली और दूसरी के बेटे तो अस्सी बरस मे फटनेवाली बाप की नई जवानी पर शर्म से गर्दन झुकाकर ही रह गए, मगर तीसरी के तीनो लाल जो अपने भतीजो के साथ क्राति के युग मे पैदा हुए और पले है, हाकी की स्टिके लेकर दरवाज़े पर खडे हो गए। गर्मा-गर्मी मे उन्होने छिदम्मी की छकलिया-दुपलिया के लत्ते-पलत्ते उडा दिए, दो-तीन क्रातिकारी तमाचे भी जड दिए, टाग तोड़ने की धमकी देने लगे। बडे बेटे ने आकर बाप को बचाया।

ऐसे सुसवाद मुहल्ले के मनोरजन की सामग्री बनने से नही बचा करते। उसी रात को लाला इदरमल के कीर्तन मे, बाबू राधेश्याम के चबूतरे पर जग्गू बैद की बैठक मे ··जहा देखो, इसी की चर्चा चल निकली। एक मनचले ने तो गीत भी जोड लिया कि "बूढे बैल छिदम्मो लाल, कबर मे ब्याह रचाने वाले।"

खबर मेरे कानो तक भी पहुची। मजाक सूझा, फिर लोभवृत्ति जागी। सोचा फटे मे पाव डालकर जरा हम भी अपने जी की निकाल लें। एक बार हिचक हुई; मैंने अपने समाजोपयोगी जीवन-दर्शन और कला का उपयोग कभी अपने मुहल्ले मे नही किया था। अब तक इसे सिद्धान्त की तरह मानता आया हू, मुहल्ले वाले निश्चिन्त भी है। मगर छिदम्मी सेठ की छदामो मे मोहिनी थी। मेरा सिद्धान्त टूट गया।

दूसरे दिन छिदम्मी सेठ की हवेली पर पहुचने से पता लगा कि मोर्चा तगडा है। तीसरी के तीनो, बाहरवालो को तो क्या घर के नौकर-चाकरो तक को अपने बाप के पास फटकने नहीं देते थे। घर की स्त्रिया उन्हे मत्र दे-देकर और उक-साती थी। मिलने की मना सुनी तो और भी जी मे ठान ली। अपने उर्बर मस्तिष्क का लखलखा सुघाकर किसी तरह हम छिदम्मीमल के पास पहुच ही गए।

सेठ छिदम्मी को दुखडा सुनाने के लिए एक आदमी मिला, अपनी फोश गालियो के कोश से चुन-चुनकर घरवालो के लिए रत्न लुटाने लगे। तीसरी के लाल फिर मारने को धाए। हमने बीच-बचाव किया, समझाया कि "भई, अपनी भुजा के बल पर बढ़े हैं; इतनी माया बटोरी है; जिन्दगी हुकूमत और रौब-दाब से बिताई है। घर के बडे हैं। इस उम्र मे ऐसा व्यवहार कर इन्हें ओछा मत बनाओ।"

"ओछा तो यह आप ही बन रहा है खूसट। अपनी हविस के लिए दो लड़कियों की ज़िन्दगी मिटा चुका है, अब फिर तमाशा दिखाने चला है। हम इसकी हड्डी-पसली तोड़ डालेंगे···" एक लड़का बोला, दूसरा बोला, तीसरे ने ज़बान खोली। ···सभी कुछ न कुछ कह चले। किसीने गर्मी मे बात की, किसी ने सिद्धान्त की चर्चा चलाई, कोई घरेलू दृष्टि मे ऊच-नीच की चर्चा समझाने लगा। सेठ छिदम्मी अपनी अकड़ पर बार-बार सान चढाने लगे। उन्हें सबसे ज्यादा इस बात पर क्रोध था कि जिन्हें पैदा किया, उन्होने ही उन्हें घर मे बद कर रक्खा है। घर में कौवा-रार मच रही थी। इजानिब ने भी नारद की तरह सबसे मीठे बनकर आग मे घी डाला, छिदम्मी लाला का हौसला बढाया। बड़े लड़के को समझाया कि इन्हे सबसे ज्यादा ताव इसी बात का है कि यह कैद किए गए हैं। ज़रा बाहर हो आएगे, ठडे हो जाएगे, फिर ऊच-नीच समझाकर बहला लीजिए। मैं भी इनके मन का बोझ हल्का करूगा।

मुहल्ले की मुरव्वत से लड़के हमसे कुछ कह तो न सके, हालाकि मेरा बीच मे पड़ना उन्हें खतरे से खाली नही लगता था···यह मैं उनके चेहरों पर पढ रहा था। मगर यह कि हम भी तो हम ही हैं, बड़े-बड़े इलेक्शन लडाकर कइयो के छक्के छुड़वाते हैं, हमने जीवन-भर राजे-रजवाड़ो की रियासतें फुकवाई हैं। बड़े-बड़े महाजनो को सोलह दूने आठ का पहाड़ा पढाया है। अजी अपने लिए हमने अपने घरवालो तक को उजाड़ा है, फिर भला छिदम्मी के लड़के किस खेत की मूली थे। लाला को अपने साथ-साथ घर मे निकाल लाया।

सेठ छिदम्मी को हमारे घर आए आध घटा भी नही बीता था कि हवेली मे बुलावे आने लगे। छिदम्मी भला क्यो जाते? वे पहले ही से करेला हो रहे थे, और अब तो मेरी नीम भी चढ चुकी थी। सारा घर हार गया छिदम्मी टस से मस न हुए। कहने लगे, अब तो तभी आऊगा घर मे, जब घरवाली होगी। हम भी तन मन धन से सेठ छिदम्मी की मनोकामना पूरी करने मे लग गए। तन मन की सेवा मे कुछ लगता नही था, धन की सेवा मे जो लगता था, सेठ उनके प्रोनोट लिख देते थे।

मोहल्ले मे प्रोनोटो की चर्चा फैलने लगी। हमारे खिलाफ मोर्चा शुरू हुआ। जब मैं बाहर निकलता, लोग बोलिया-ठोलियां मारते थे। मैं हसकर निकल जाता था। आप तो जानते ही हैं, मैं दार्शनिक आदमी, अपने काम से काम रखता हू, मान-अपमान की परवाह नही करता। लड़की की तलाश जारी रही। मैं बाहर ही बाहर रहा था, शहर मे तूफान होने का अदेशा था।

एक लड़की मिल गई। छिदम्मी के एक सजातीय अनेक पुत्रियों के पिता जो अपनी गरीबी की आड़ लेकर दहेज देने के बजाय दहेज लेने में पटु थे, छिदम्मी की आयु का हिसाब लगाकर ब्लैक मार्केट का भाव मांगने लगे। मैंने भी समझ

लिया कि यह बेटी का बाप मेरी परम्परा का एक समाजोपयोगी दार्शनिक है। दस में सौदा तय किया। छिदम्मो से पन्द्रह की दस्तावेज़ लिखाई।

ब्याह का दिन तय हुआ। चार बराती—एक नाई, एक पुरोहित, एक पाधा और चौथा मैं। घर मे गौर-गनेश पूजकर दूल्हे के साथ रात के समय बाहर निकले तो देखा, छिदम्मी के आठो लड़के, पोते और मुहल्ले के चार-पांच धनी-धोरी दरवाज़े पर खड़े हैं। उन्हे देखते ही मुझे सांप सूंघ गया। सोचने लगा, इतनी गुप्त सूचना केवल मेरे ही किसी साहबज़ादे की मार्फत बिक सकती है। जो भी हो इस वक्त मैं ठगा-सा खड़ा रह गया। उधर छिदम्मी के बड़े मुन्नू ने बाप के कदमों पर टोपी रख दी, दूसरे भी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। कहने लगे, "शादी करनी ही है तो अपने घर से कीजिए, इस तरह मुह काला न कीजिए। आप जो भी हुकुम करेंगे, हमारे सिर माथे पर होगा।"

आपुसदारो ने समझाया, सेठ छिदम्मी भी राजी हो गए। मुझे भी सब सच्चे दार्शनिक की भांति मुहल्ले वालों की बात का समर्थन करना पड़ा। तय हुआ कि बारात दूसरे दिन जाएगी, धूमधाम से जाएगी।

बड़े मुन्नू ने सबके सामने ही मुझे ब्याह का अगुआ बनाया और बाप से घर चलने को कहा। यही मै किसी भी तरह न चाहता था। खुद छिदम्मी भी राजी न थे। उन्हें डर था कि कहीं घर जाकर यह सारे दिखावे के सब्ज़बाग समेट न लिए जाएं। मुहल्ले के एक दूसरे रईस लाला उन्हें यह कहकर ले गए कि मुहल्ले के नाते दूल्हे पर हमारा भी हक है।

दूसरे दिन बरात चली। गाजे-बाजे और धूमधाम को देखकर सेठ छिदम्मी भी शरमा गए. घरों के छज्जे और दरवाज़े औरतो से गली-बाज़ार देखनेवालो से पटे हुए थे। सेठ छिदम्मी हमसे कहने लगे, "बड़े मुन्नू ने जो यह सब धूमधाम की है वह हमारी उमर को शोभा नही देती।"

हमने कहा, "वाह सेठजी। अभी आपकी उमर ही क्या है?"

सेठ फिर बहक मे चढ गए। हंसकर बोले -"लड़के भी यही कहते हैं।"

छिदम्मी के लड़कों ने हर बात मे मुझे ही अगुआ बनाना शुरू किया। बराती, नौकर-चाकर, नाई बाम्हन, बाजे-गाजेवाले सब मेरे ताबे मे कर दिए। बरात जब मोटरो मे बैठी तो नौशा को लेकर बड़े मुन्नू तो आगे निकल गए, बाजेवालो की बिदाई मुझे ही देनी पड़ी। स्टेशन पर ड्राइवरो का इनाम-इकराम भी मुझे देना पड़ा। छिदम्मी के मुन्नू हर बार सामने से नदारद हो जाते थे। मैं परेशान, इस वक्त मेरे साथ जो चाल खेली जा रही है, उसका मैं जवाब भी नही दे सकता। दूसरा कोई मौका होता तो ऐसे-ऐसे मुन्नुओ को हम उल्लू बना देते, मगर मैंने भी सोचा, शादी से छिदम्मी तो मेरे हाथ रहेगा ही, वसूल कर लूगा। इसी विश्वास के साथ मैंने मुन्नू के आगे बढ़ने से पहले ही बरातियों के टिकट भी खरीद लिए।

तब मुन्नू ने आगे बढ़कर कहा—"क्या करूं, मैं तो खर्च दे देता, पर बाबू ने हमसे कहा है कि हिसाब-किताब सब आप ही के जिम्मे रहेगा, बाद में वह आपसे समझ लेंगे।"

मुझे नये सिरे से यकीन हो गया कि बुड्ढा अभी मेरे ही कब्जे में है।

पच्चीस-तीस आदमियो की बरात मे, शहर के कुछ चुने हुए लोग और छिदम्मी के लडको-पोतों के साथ पढनेवाले यूनिवर्सिटी-कालेजों के लडके—इंटर क्लास मे बारात जा रही थी। जिस देखो वह मेरा ही मुंह देख रहा था। मैंने सामान चढवाया, सबके बैठने का इतजाम किया, कुली-ठेले के पैसे चुकाए, जब ट्रेन चली तो 'नमो लक्ष्मीनारायण' किया···मगर ट्रेन के चलते ही हमने देखा कि हमारा बडप्पन बगैर किसी इत्तिला और नोटिस के बडे मुन्नू के कब्जे मे आ गया। उनके नौकर-चाकर पान-सिगरेट-शरबत-सोडा का न टूटनेवाला क्रम साधने लगे। बरातियो ने मुन्नू को सलाह-सूत देना शुरू किया। मैंने देखा कि मुझे अब कोई बैठने तक को नही पूछता। लडको की टोली हमे बात-बात मे कर्त्ता धर्त्ता जी के नाम से कभी पैर दबाने के लिए, कभी पीकदान उठाने के लिए, कभी मेरी हथेली को ऐशट्रे बनाने के लिए पुकारने लगी। पान तकसीम हुए, हम मुह मे रखने ही जा रहे थे कि एक लडके ने झपट कर छीन लिए। कहने लगा कि आप तो कर्त्ता-धर्त्ता हैं, क्या कीजिएगा खाकर! इसी तरह शरबत का ग्लास छिना, सिगरेटें छिनी। कहते शर्म नही आती है, मगर यह सच है कि मेरी चतुराई फना हो गई, कोई हमारे हथकडे बयान करने लगा, कोई हमारी राजनीतिक पोलें खोलने लगा, बराती-घराती—सभी उस हंसी-मज़ाक का आनन्द लेने लगे। मै करता भी तो क्या, उनकी हंसी को इस तरह सिर-माथे पर चढाने लगा, गोया अपने ऊपर आप हस लेने की मुझे आदत है। इतने मे लडकों ने एक नई नकल शुरू की। एक लडका मेरा पार्ट करता अलग शान से बैठ गया, दूसरा लडका सौ बरस की बुढिया बना। वह बुढिया कमर झुकाकर मेरे प्रतिरूप के पास आकर बोली —सुना है, तुम बूढो का ब्याह कराते हो। मेरा भी ब्याह करा दो। न हो तो अपने ही साथ कर लो। मेरे पास दो लाख रुपया है।

मेरी नकल करनेवाले ने ऐसा अभिनय किया, जैसे मेरी लार ही टपकने लगी हो। नकल देखकर सारे कम्पार्टमेंट का हसते-हसते बुरा हाल हो गया। बुढिया के चचल-कटाक्षपात, झुकी कमर के साथ उसका नाचना, पोपले मुह से प्रेम के गीत गाना, और फिर जब मेरा और बुढिया का डुएट गाया गया तब तो लोगो ने आसमान ही सर पर उठा लिया। मैं पत्थर बनकर सब देखता रहा। इस वक्त हर तरह से बेबस था। मगर नकल के अन्त मे जब यह दिखाया गया कि जिस दो लाख के लालच मे हमने बुढिया से शादी की थी वह रुपये भी न मिले और मेरे घर मे सौतो का झगडा होने लगा, मेरी कानखिचाई होने लगी

…तब मैं किसी तरह भी बर्दाश्त न कर पाया। गर्म हो उठा। सब लोग समझाने लगे कि आप भी बड़े होकर बच्चों का बुरा मानते हैं। अजी, यह तो बरात है बरात।

खैर, यहा तक भी बर्दाश्त किया। मगर हद हो गई कि जब खाना आया तो यार लोग पत्तल उडा ले गए। दूसरी आई, वह भी छीन ले गए। मैंने एक स्टेशन पर उतरकर कम्पार्टमेंट मे बाहर जाना चाहा तो सब लोग दरवाजे पर खड़े हो गए, मेरे पैर छूने लगे, मेरा तमाशा बनाने लगे।

पूरा दिन बीत गया। न पान, न सिगरेट, न एक बूंद पानी, न अन्न का एक दाना…तमाम उम्र मे इतना गहरा चकमा कभी न खाया था। बेशर्म जिदगी मे शर्म ने घूघट उठाकर कभी हमको हमारे ही दिल मे इस तरह पहले न देखा था।

स्टेशन आया, हमने देखा —मेरा बक्स और बिस्तर ही गायब। दिनभर का भूखा, हर तरह से जलील किया गया इस वक्त मैं अपना आपा ही खो बैठा। मारपीट करने लगा, चीख-चीखकर गा लिया देने लगा ··लड़के और घेर-घेरकर मुझे हुरकाने लगे। बरात के दूसरे सम्भ्रान्त लोग छिदम्मी सेठ को लेकर आगे बढ़ गए थे। प्लेटफार्म पर भीड लग गई। रेलवे पुलिस आ गई, पूछने लगी, क्या हुआ। एक लडका चट से बोला, इसे भूत चढ गया है : सामाजिक न्याय तत्काल ही शह दे उठा। लोग मिर्चों की धूनी देने की सोचने लगे।

किसी तरह हाथ-पैर जोडकर जान छुडाई। अपनी दुर्दशा के अन्त मे मैं यह भी बतला दू कि विवाह सेठ छिदम्मी का नही, वरन तीसरी के तीसरे बेटे का हुआ। मुझसे बैर चुकाने के साथ ही साथ मेरी दुर्दशा दिखाकर सेठ छिदम्मी को आतंकित करना उनके प्रोग्राम का एक सुनिश्चित कार्यक्रम था।

(1951)

है बाबू सन्तावन आया है

मेरा नाऊ स्वामीदयाल उर्फ डाक्टर चम्पीवाला बडा भगत है। प्रति सप्ताह मालिश करने के लिए आकर गली, मुहल्ले एव हाट-बाट की न जाने कितनी बातें सुनाता है और अन्त में निसांस डालकर कहता है, "दुनिया मे पाप बहुतै बढ गया है पण्डित बाबू। कलजुग चारो चरन टेके खडा है।"

तीन वर्ष हुए एक दिन डाक्टर मालिश करने आया और चुपचाप पैर दबाने में लग गया। डाक्टर यो चुप नही बैठता, वक-बक करना उसकी विशेषता है। उसकी गहरी उदामी देखकर मैंने पूछा, "क्या बात है डाक्टर, आज बडे चुप हो ?"

एक निसांस डालकर उसने कहा, "का बताई पण्डित, हम बडे सोच मे पडे हैं। कल रात सुना कि मन्तावन आ रहा है।"

"सन्तावन कौन ?"

"अरे ओही जौन गदल मचाता है।"

मन्तावन और गदल के अर्थ बूझने मे कुछ क्षण मेरा दिमाग चकराया, फिर हमी आ गई। मैंने कहा, "अरे डाक्टर तुम भी किम चिन्ता मे पड गए। सन्तावन अभी दूर है।"

"दूर ? किती दूर है पण्डित बाबू ?"

"अरे अभी तीन साल पडे हैं, और इम बार का सन्तावन गदर नही मचावेगा।"

डाक्टर मौन हो मोच मे पड गया। थोडी देर बाद उसने फिर पूछा, "अच्छा पण्डित ये कहू लिखा है कि गदल नही मचेगा।"

उमे व्यर्थ की चिन्ता से मुक्त करने के लिए मैंने कह दिया, "हा भागवत मे लिखा है।"

"तुम ठीक-ठीक पढे हो पण्डित बाबू। गीता का परमान है कि जब-जब सन्तावन आय के गदल मचाता है तब-तब भगवान आते हैं। अबकी कलंकी औतार आवेगा। तुम क्या जानो पण्डित जी महाराज, सन्तावन बड़ा गदल मचावेगा।"

गीता का प्रमाण सुनकर मेरा पढ़ा-लिखापन धड़ाम हो गया। मैंने सोचा कि सन् सत्तावन के गदर ने जनमानस पर कितना जबर्दस्त प्रभाव डाला है। डाक्टर बेचारे की तो बिसात ही क्या, हाई क्लास इण्टेलक्चुअल लोग योगीराज श्री अरविन्द की भविष्यवाणी का हवाला देते, अच्छे-अच्छे समाचारपत्र हिसाब फैलाते, और सन 1957 मे भी कुछ गजब होना एक पूर्व निश्चित बात मान ली गई थी।

अपनी बात कहू, मुझे यह सत्तावनी समा पसन्द नही आता था। आन्दोलन के दौर मे प्रत्येक राजनीतिक सम्प्रदाय के नेता, सन् सत्तावन की भारतीय क्रांति को प्रथम स्वाधीनता सग्राम कहा करते थे। मगर मुझसे उनकी यह मान्यता कौडी मोल भी मानते न बनी। मन मे तर्क यह था कि अग्रेजो से पहले भी अनेक बार आक्रमणकारियो से भारतीय लड चुका था, फिर सत्तावनी गदर मे ही कौन सुर्खाब के पर लगे थे कि उसे प्रथम स्वाधीनता सग्राम कहा जाए? आप मानें न माने, सन् 29-30 मे प्राचीन इतिहास और तत्कालीन आदोलन की खबरो से भरे समाचार पत्र पढते-पढ़ते मेरी यह धारणा बन गई थी कि जैसे हमारे जमाने मे एक होकर भारत आजादी के लिए लड रहा है वैसा कभी नही लडा। राष्ट्रीय भावना इतनी व्यापक होकर पहले कभी नही जागी।

किन्तु डाक्टर के अक्सर सत्तावन चर्चा करने के कारण अनेक पढ़े-लिखे बाबू लोगो से भी प्राय. सुनकर मेरा कौतूहल एक नये रूप मे जाग उठा। आखिर सत्तावन को लेकर हमारे जनसाधारण मे इतनी चर्चा क्यो? यह भावना क्योकि उस साल खून-खराबे वाली प्रलय आएगी और सब कुछ बदल जाएगा? सम्पूर्ण नाश की नशीली रोमैण्टिक तमन्ना तो समझ मे आती है, कुण्ठित जनजीवन नई गति चाहता है और अपनी विवशता मे सर्वनाश की कल्पना कर सन्तोष मानता है। परन्तु समाज के आमूल परिवर्तन की बात किसी पूर्व अनुभव के ही सस्कार मे उदय होगी।

गदर के बाद राजे-नवाब मिट गए, विक्टोरिया का राज आया। इस प्रसग को लेकर पुराने बूढो से बात कीजिए तो देखिएगा कि मल्का महारानी के राज की गुण गाती उनकी कमज़ोर आवाजे कैसी बलवती हो उठती हैं। तथाकथित प्रथम स्वाधीनता सग्राम के तुरत बाद ही भारतीय जनता यो अग्रेज भक्त कैसे हो उठी? नवाबी बादशाही के बाद ऐसी क्या नई विशेषता आ गई थी कि जिसे सर्वत्र सराहा जा रहा था? गदर के बाद भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति मे बडा उलट-फेर हुआ। उच्च वर्णो मे से बाबू वर्ण का उदय हुआ जिसके हाथ मे जमाने की बागडोर आ गई। फिर शूद्र वर्ण के लोग भी अग्रेजी पढ-लिखकर इस नये बाबू वर्ण मे सम्मिलित हुए। निस्सदेह एक क्रातिकारी परिवर्तन था जो भारत के इतिहास मे पहली बार हुआ।

इन बातों पर विचार करते गदर संबंधी मेरी पुरानी मान्यता डगमगाने लगी। सहसा ऐतिहासिक परिस्थिति की ओर ध्यान गया। गदर या स्वाधीनता संग्राम खास तौर पर दिल्ली से लेकर बिहार के कुछ भाग तक तथा मध्य भारत की मऊ छावनी तक सीमित रहा, कलकत्ते के विद्रोही सैनिक भी इधर के ही थे और यह सारा इलाका तो हिन्दी भाषियों का है। एक बार यह बात डा० राम-विलास से कही तो वे बड़े जोश से गदर को हिन्दी भाषी क्षेत्र का जातीय सग्राम मानने को तैयार हो गए। फिर तो कई हवाले भी सामने आए।

यह मानने से कोई इन्कार नही कर सकता कि भारत के सास्कृतिक इतिहास में इस क्षेत्र का स्थान सर्वोच्च है। भारतीय जन गण के मन प्राण मे बसे पौराणिक ऐतिहासिक नामक नायिकाए यही की हैं। सामन्ती साम्राज्यवाद का गढ भी यही इलाका है। यही आर्यावर्त है और सत्तावनी क्राति के हेतु इन सब बातो मे मेरे मन मे एक नया वैचारिक धरातल बनने लगा।

उस क्राति मे तीन धाराओं का सगम हुआ था। एक अग्रेजो के मातहत भारतीय सेना मे गदर मचा। दो : राजे-नवाब, रानी, बेगम अंग्रेजो के खिलाफ लड़े। तीन : अवध, बुन्देलखण्ड और बिहार के जगदीशपुर क्षेत्र मे किसानो और स्त्रियो तक ने अपूर्व वीरता दिखाई। इन सबमें रोटी और कमल के निशान घूमे थे, और तवायफों और संन्यासियो के भेष मे विद्रोह की आग भडकाने वाले भी।

इसका दूसरा पक्ष भी ध्यान देने योग्य है। एक अंग्रजो की ओर से सिक्ख और तिलगे लडे थे। दो : गदर वाली पलटनो ने भारतीय प्रजा को भी सताया, लूटा, राजे नवाब प्रयत्नो पर भी सगठित नही हुए, अनेक तो गदर वालो की भी मदद करते थे और अग्रेजो की भी। तीन . रोटी कमल के निशान और तवायफो, सन्यासियो के विद्रोह भडकाते घूमने से यह सिद्ध होता है कि भारतीय सामन्तो का एक केन्द्रीय सगठन था, पर वह मजबूत और भारतव्यापी न था। सबने बहादुरशाह को सिरमौर बनाया था, उसमे देश को आस्था न थी। राजपूत, बगाली, दक्षिणी राजे-नवाब इस सग्राम से तटस्थ रहे।

भारत जैसे प्रभा और प्रतिभावान देश की यह उलझी हुई बदरग तस्वीर बडे कष्ट और लज्जा के साथ मन को ग्राह्य होती है। सन् सत्तावन का सघर्ष भले हिन्दी भाषी क्षेत्र का ही जातीय सग्राम रहा हो, पर उसमे अन्तर्निहित समस्या का तो देश भर मे सम्बन्ध था। किन्तु सन् सत्तावन के दो सौ वर्ष पहले मे ही यह महादेश मुट्ठी भर अग्रेजो के इशारे पर नाचने लगा था, और इतिहास साक्षी है उसके पहले भी अनेक बार नाचा है। सर्वगुणी होते भी उसमे कोई जबर्दस्त कमजोरी अवश्य है जिससे उसका महत्त्व बार-बार धुल-पुछ जाता है।

यह कमजोरी सिकन्दर के आक्रमण काल से ही दिखाई देती है और सिकन्दर ने जो भारत के विशेष फलो के बारे मे पूछा था तो किसी ईमानदार और चोट

बताए भारतीय बुजुर्ग ने बतलाया था : बैर और फूट। बात सच है, और इसी जबर्दस्त कमी को देश के सर्वसाधारण दुहराते नहीं अघाते।

मगर मुझे इस पर भी आश्चर्य होता है कि ऋग्वेद में अनेक मंत्र हैं जो संगठित राष्ट्र भावना का परिचय देते हैं। महाभारत तो देश भावना से भरा पड़ा है। कई पुराणों में भारत के मानचित्र का विवरण मिलता है, प्रातः पठनीय श्लोकों में भारत के सात पर्वत सात नदियों आदि के नाम लिए जाते हैं, फिर यह क्यों कि विश्वगुरु होने के दावेदार अवतारों के देश में ही सदा अंधेरा बना रहा ?

सच मानिए, सन् सत्तावन के अपने शानदार शौर्य प्रकरण और उसमें मिली शर्मनाक पराजय को ध्यान में लाकर मैं दहल गया। इस देश के भाग्य में क्या सदा यही बदा है ? मगर खैर, सन् सत्तावन में भारत हारा भी और जीता भी। हार उस सामन्ती प्रथा की थी जिसने भारत के जनमानव की प्रगति को जकड रखा था और जीत ? जग जाहिर है।

मैं सामन्ती सभ्यता को कलंक का टीका लगाकर डिसमिस नहीं कर रहा। गदर के पराभव को मुगल साम्राज्य के विघटन काल से जोड़कर देखने पर तस्वीर बिल्कुल साफ हो जाती है। अकबर के अन्तिम दिनों में ही उसमें घुन लग चले थे। सिंहासन को लेकर ही जहांगीर ने पिता से विद्रोह और पुत्र से सौतिया डाह किया, शाहजहां ने भाइयों को मारा, औरंगजेब ने भाइयों की हत्या की और पिता को बंदी बनाया। समाज की प्रथम संगठित इकाई का घर ही जब फूट गया, ईश्वर का प्रतिनिधि सम्राट ही जब आदर्शच्युत हो गया तो समाज को असन्तुलित होने से कौन रोक सकता था।

आलमगीर के बाद सिंहासन-सिद्धि के लिए खून-खराबे और विघटन की यह परम्परा उसी प्रकार बनी रही। नई बात यह और हुई कि फिर बहादुर शाह प्रथम से लेकर बहादुरशाह 'जफर' तक तैमूर वंश में ऐसा कोई व्यक्तित्व न उभरा जो साम्राज्य की शक्तियों को धारण कर पाता। यह शायद हो भी नहीं सकता था। मुगल बादशाहों में अकबर समझदार था। फिर जो आए जग का भला करने का जोम लिए हुए विवेक शून्य भावुक व्यक्तित्व आए और केवल अपना भला चाहते हुए युक्तिपूर्वक अपनी ही इच्छा सिद्ध करने वाले आए। औरंगजेब के बाद तो महज काकटेल चरित्र आए, जो बहती बयार के साथ थोड़ी ही दूर और थोड़ी ही देर बह सकते थे।

औरंगजेब की धर्मांधता और युक्तियों ने मुगल साम्राज्य के अनेक शत्रु उत्पन्न कर लिए थे। घर में शत्रु, बाहर शत्रु और सम्राट व्यक्तित्वहीन, चरित्र-हीन। घरेलू शत्रुताएं खड़ी हो गईं और देश भर में राजे-महाराजे नवाब सामन्त स्वतन्त्र होने लगे। मराठों ने दिल्ली तक पर हमला किया। बड़ी लूटपाट हुई और सम्राट फर्रुखसियर अन्धा करके कैदखाने में डाल दिया गया। फिर जब

सम्राट निर्माता सैयद बंधुओं ने मुहम्मदशाह 'सदा रंगीले' को सिंहासन पर बैठाया तो इन्हें ख्यालों से फुरसत न थी; सरदारों को महत्त्वकांक्षाएं पूरी करने से न थी और मराठे सिक्ख राजपूत इन शासकों को परास्त करने में लगे थे। ऐसे समय में भारत पर आक्रमण करने के लिए नादिरशाह उठ दौड़ा। सम्राट का साम्राज्य सिमटकर लालकिले की चहारदीवारी में समाता चला गया। देश में आपाधापी मच गई।

जो सूबे मुगलशासन से स्वतंत्र हुए, वहां भी विलास-व्यभिचार कुचक्र का ही बोलबाला था। प्रजा की स्त्रियां और धन चाहे जब लूट लिए जाते थे। सिपाहियों को वेतन नहीं मिलता था, इसलिए वे लुटेरे बन गए थे, किसानों की धरती खेती लुट गई थी, इसलिए वे लुटेरे बन गए थे। निम्न श्रेणी की औरतों के प्रभाव में बादशाह लोग नये-नये जागीरदार बनाते। जागीरदारों में कुलीनों-अकुलीनों का संघर्ष बढ़ा। कुचक्र गहराए मुसलमान हिन्दू को दबाता ही था, मुसलमानों को भी न छोड़ता था, ब्राह्मण ठाकुर नीची जातियों को तो पीसते ही, आपस में भी दूसरे को न छोड़ते। व्यक्ति की अहंता अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानने के अंधे-जोम में क्षुद्रता की अन्तिम सीमा तक उतर आई।

ऐसी परिस्थितियों में अंग्रेज अपने गहरे जाल फैलाने लगे। सिराजुद्दौला हैदरअली, टीपू, मराठे सिक्ख, सिंधी, बलोची एक-एक कर अंग्रेजों ने सबको छका-कर तोड़ दिया। देश को एकता के सूत्र में बांधने और मजबूत करने वाली कोई शक्ति नही रह गई थी। सामंती समाज में आगे बढने की गुंजाइश ही न थी।उन्हें आपसी बैर और फूट खा गए थे और जनता सदियों की अत्याचार पीड़ित थी।

भारत के ऐसे समाज के विपरीत अंग्रेजों का जातीय संगठन बहुत मजबूत था। मेरी समझ में इसके तीन मुख्य कारण थे। एक : इनके इतिहास मे शक्ति-सन्तुलन की नीति की परम्परा काफी पुरानी थी। इससे अपना व्यापार बढ़ाते-फैलाते हुए ये लोग अन्य विदेशी सत्ताओं को सुविधानुसार तोड़ने-जोड़ने में बेजोड़ रहे। दो: तात्कालिक वैज्ञानिक आविष्कारों का जैसा स्वागत और उपयोग इन्होंने किया वैसा किसी ने नही किया इसलिए तीन : इनके यहां बाबू और मजदूर वर्ग का जन्म पहले ही हो गया, जिससे राष्ट्रीय सत्ता केवल सामन्तों के हाथ मे न रहकर डैमोक्रेटिक हो गई। इन्ही कारणों से ब्रिटिश जाति उस समय ससार की जिस भी सामन्ती शक्ति से मुकाबले में आई, युक्तिपूर्व सवाई उतारी।

इस प्रकार सन् सत्तावन में भारत पर अंग्रेजों की पूर्ण विजय को मैं सब दृष्टियो से सामन्ती सभ्यता पर गणतान्त्रिक सभ्यता की ओर धार्मिक सदियों वाले पुराने युग पर नये वैज्ञानिक युग की विजय के रूप मे देखना उचित समझता हू। इस अंग्रेजी शासन प्रणाली द्वारा भारत का धन तो बाहर खिंचने लगा मगर एक नई जनशक्ति भी ऊपर उठ आई। वह अंग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू वर्ग की थी जो

अंग्रेजी भाषा द्वारा नई भौतिकवादी पश्चिमी दुनिया का सम्पर्क पढ़कर देश को नया उत्साह दे रहा था। अंग्रेजों की शासन पद्धति भी पार्लमेन्टरी पद्धति से प्रभावित होने के कारण सामन्तकालीन व्यवस्था से कहीं अधिक सुधरी थी।

युगों की आपाधापी के बाद यह सुथरापन और स्थायित्व भारतीय जनता को अपने पूर्व के इतिहास, दर्शन, साहित्य, संस्कृति आदि पर पढ़ने सोचने, का मौका देने लगा। बाबू वर्ग के उदय होने से देशव्यापी जागरण हुआ, राष्ट्रीयता की नई लहर आई, जनसाधारण का युग फूटा। वैज्ञानिक आविष्कार ज्यों-ज्यों इस विशाल देश को एक सूत्र में बांधने लगे हमें अपनी सदियों पुरानी सांस्कृतिक एकता और साहित्य कला आदि के महत्व का ध्यान सताने लगा, अनेक बातों में हमने पश्चिमी दुनिया से अपने आपको अधिक ऊचे नैतिक स्तर पर पाया और हमारी हैरत बढ़ती गई कि फिर भी हम बैर-फूट में क्यों फसे ?

नई चेतना वाला बाबू वर्ग भी बैर-फूट से मुक्त न था। वहां बड़े बाबू और छोटे बाबू थे। कुलीन-अकुलीन ब्राह्मण-अब्राह्मण बाबू थे। अंग्रेज अपनी सुविधा-नुसार इस भारतीय परंपरा की ऊंच-नीच को बढ़ाते या दबाते थे। वे बनिये सामंत थे, फूट डालकर न्याय के नाम पर बन्दर बांट करना उनका सिद्ध खेल था। इस खेल के लिए उन्होने तलवार का सहारा कम लिया, वैधानिक जाल का अधिक। इस सामन्ती व्यवस्था ने हमारी आर्थिक व्यवस्था को जड़ से उखाड़ दिया था : इसी से देश का हृदय उसके गांव नष्ट हो गए। गांव से ही हमारा मजदूर वर्ग और अधिकांश बाबू वर्ग आया था।

बाबू वर्ग में आए हर जाति के लोगों ने अंग्रेजी समाज की अपेक्षा भारतीय समाज को पिछड़ा हुआ पाया। इसके सुधार के लिए उसने नए जातीय क्लब बनाए। अपनी पुरानी पंचायतें वह गांव में ही छोड़ आया था। ये नए क्लब भारत-व्यापी संगठन बने और इन्होंने अपने-अपने अखबार भी निकाले। दफ्तरों में जिस जाति का विशेष सत्ताधिकारी हो जाता, उसी बिरादरी को वह नौकरी मे घुसाता था। ऐतिहासिक परिस्थितियां हर जाति के बाबू को इस स्तर पर रहने के लिए मजबूर कर रही थीं और व्यापक राष्ट्रीय स्तर भी बढ़ा रही थो।

देश की आर्थिक गरीबी हर जाति से सम्बन्ध रखती थी। वैज्ञानिक युग की विशेषताएं हमे पुराने आर्थिक स्तर पर लौटने नहीं देती थीं। इसलिए हम संगठित हुए हमारे सुधारवादी सामाजिक आन्दोलन भी संगठित हुए। पर क्योंकि पुराना जातीय ढांचा दफ्तरों में बाबू अफसरों की ऊच-नीच वाली पालिटिक्स में बड़े काम का था उसकी जड़ें न उखड़ सकीं। धन्धे कम थे। नौकरी ही जीविका का साधन थी। अंग्रेज़ फूट डालने पर उतारू थे। जातिवाद भारत से न जा सका।

मैं एकाएक भरे मुह से तो नही कह सकता कि यदि अंग्रेज न आते और फिर भी वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ औद्योगीकरण होकर बाबू वर्ग उदित हो जाता

तो जाति भेद अब तक लुप्त हो चुका होता, पर एक जगह अपनी बात मुझे बांचती अवश्य। जाति भेद के टिके रहने का सबसे बड़ा कारण विवाह संस्कार है। खान-पान में अलगाव मिट जाने पर भी विवाह आज स्वजातियों में ही होते हैं।

आचार्य क्षितिमोहन सेन के मत से यह वर्जनशीलता (एक्सक्लूसिवनेस) असंस्कृत आदिम अवस्था का एकमात्र धर्म है। आर्यों मे यह रूढ़िवादिता न थी। गुण कर्मानुसार व्यक्ति की जाति कभी भी बदल जाती थी। अब ऐसा सदियों से नहीं है। असख्य जातियां हैं, उनके ऊंचनीच हैं। कितने ही विदेशी कबीले भी आकर बसे जो विजेता होने से ऊंचे रहे। इनके अपने-अपने संघ होते थे और कालान्तर में ये जातियों का रूप ले गए। रोटी-बेटी के व्यवहार से बहुत सी जातियां एक में मिली पर भेद अलगाव और इसीलिए शत्रुताएं भी बनी रहीं।

वैदिक-धर्म ने यहां की अनेक जातियों को वर्णाश्रम धर्म मे समेट लिया। पर उससे काम राष्ट्र का इतना न हुआ जितना पुरोहितों का। मुसलमानों के आने से पहले तक अनेक बार यहां वेदविरोधी स्वर उठा है। इसमें अन्य धर्मावलम्बी जातियों का अस्तित्व बोलता है, दबने दबाने और विद्रोह की कहानी सुनाई पड़ती है। हमारे यहा जातियो और धर्म का उत्थान पतन हुआ ही पुरोहितों और सामन्तों की संकीर्णता क्रूरता के कारण। ईश्वर और धर्म के नाम पर हमने एक दूसरे से बड़ी घृणा की है।

इस घृणा और दमन से पीड़ित भारतीय जन पक-पककर मानव भी बना। उपनिषद् काल का मानव धर्म, बौद्धों जैनो की अहिंसा, भागवत धर्म, सन्तों का उदार प्रेम सब इस गन्दे सनातन धर्म की प्रतिक्रियावश पनपे। सामन्ती पुरोहितो अत्याचारों से पीडित जनता सिमट-सिमटकर मानवता के मार्ग पर आती है। इसी से नाना जातियों वर्णों का भारत एक हुआ है। नहीं, सामन्तो पुरोहितो ने तो बैर फूट से ही उसे विदेशी शत्रुओ का आखेट ही बनाया।

यह पृष्ठभूमि समझ लेने पर सन् सत्तावन की क्रान्ति मुझे काफी साफ दिखाई पड़ने लगती है। यह क्रान्ति इस हिन्दी भाषी मध्य देश मे ही हो सकती थी और फिर भी समूचे देश का प्रतिनिधित्व कर सकती थी। यह प्रदेश वेदधर्मी जाति के उत्थान से पहले भी समृद्ध जातियों से बसा था। वेदधर्मी सामन्तवाद के प्रवर्तक थे। कुरू, अवध और मगध तीनों सामन्तवाद के गढ़ रहे। यहां की संस्कृति ने सारे देश को बांधा। यहीं की जनता सामन्ती पुरोहिती चक्की में सबसे अधिक पिसी। यही प्रदेश बौद्ध धर्म का भी केन्द्र रहा, और बौद्ध धर्म जब कुषाणों का रक्षाकवच बनकर प्रजा पीड़क बना, तब ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान और नवीनीकरण का केन्द्र भी यही रहा। मुसलमानों और ब्राह्मणों की चक्की के दो पाटों में पिसती जनता ने सीताराम, राधाकृष्ण के सहारे यहां प्रेम प्रचार किया। यहां के पुरोहित और सामन्त जब रक्त शोषण कर ऐसे मोटे हुए कि मवेसिया शब्द

आलसी का पर्याय बन गया।

यहाँ की जनता में विद्रोह की आग सदा बनी रही है, उसने अपने धर्म अर्थात् जातीय स्वाभिमान के नाम पर सदा युद्ध किया है इसीलिए गदर मे धर्म और दीन का नारा सुनाई पडता है।

अवध, बुन्देलखण्ड और बिहार मे जनता और स्त्रिया आत्मरक्षा के लिए ही सामने आईं। सामन्ती खण्डो से वे उतना ही पीडित थी जितना अग्रेजो से। लक्ष्मीबाई के बारे मे सकेत मिलता है कि गगाधर राव के महलो की कैद से छूट-कर उनकी विद्रोही आत्मा विकृतियो के प्रति लम्बा उठी थी। वे मर न जाते तो लक्ष्मीबाई कुछ और ही होती। यह लक्ष्मीबाई जनसाधारण वर्ग से आई थी लखनऊ के विलासी महलो मे पलनेवाली वाजिदअलीशाह के परीखाने की सदस्या और शाह के बेटे की मां हजरतमहल भी जनसाधारण वर्ग की थी। दिल्ली की जीनतमहल भी जन्म से राजकुमारी नही थी। विलासी शाह और सामन्त भले ही कायर हो चुके थे, पर उनके विलासो का खिलौना ये स्त्रियां क्यो न विद्रोह करती ? रानी, बेगमो, तवायफो और साधारण किसान स्त्रियो का यह सामूहिक विद्रोह युग परिवर्तनकारी क्रान्ति का प्रमाण देता है।

इतिहासकार आर०सी० मजूमदार का मानना है कि उसके पीछे कोई सगठन न था। उनकी बात काटने का साहस कैसे करू। पर रोटी और कमल के निशान क्या बिना सगठन के फैल सकते थे ? अग्रेजो की भारतीय सेना मे नाचनेवालियों और धर्मोपदेशको के रूप मे क्राति क्या अपने आप पहुच गई ? इस सारे आयो-जन के पीछे क्या ऐसे कोई दिमाग न थे जो सगठन के सूत्रधार रहे ? मुझे तो दिखाई देता है कि वे अजीमुल्ला खा और नाना साहब पेशवा थे।

अजीमुल्ला पठान बावर्ची का बेटा था। वह सातरा के छत्रपति के वकील रगोबापू के साथ लदन मे एक सगठित आयोजन का सूत्रपात करता है यूरोप के अग्रेज विरोधी देशों का भ्रमण करके अपने भावी आयोजन के लिए प्रेरणा और बल बटोरना है, और नाना साहब को साथ लेकर तीर्थयात्रा के बहाने सामन्तो और सेनानायको को सगठित करता है। नाना साहब सहित यह भरत और राम की जोडी ही सन् सत्तावन के सगठन की पुरोहित थी। इन्ही की मत्रणा से बहादुर-शाह क्राति का प्रतीक बना। इस प्रकार क्राति का मूल स्वरूप राष्ट्रीय क्राति का था। आयोजन भी राष्ट्र व्यापी ही किया गया था। आयोजन असफल रहा, क्रांति सिमट कर हिन्दी भाषी क्षेत्र तक सीमित रह गई, यह और बात है।

भारतीय जन अग्रेजो से उस समय भले ही जीत न सका। पर उसका उत्थान सदियो की सामन्तशाही के मरण से न रुक सका। यही इस राष्ट्रीय संग्राम की बडी विशेषता है। भारतीय जन के राष्ट्रीय स्वाभिमान ने एक सदी भी न बीतने दी कि अग्रेजों की बनिया सामन्त शाही को उखाड फेंका। अहिंसाधर्मी गाधी के

नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन भी मुझे आकस्मिक नहीं लगता। गांधी का स्वर उस उत्पीड़ित मानव का स्वर था जो उपनिषत्कालीन मानव धर्म बौद्धों, जैनों की अहिंसा, भागवतधर्म और सन्त परम्परा के इतिहास में बोल रहा है।

आज सौ बरस बाद फिर सन् सत्तावन आया है। अफवाहें और भविष्य-वाणियां उसे घेरे हुए हैं। जनमन को मनोवैज्ञानिक रूप से पिछला सन् सत्तावन प्रभावित कर रहा है विश्व। के राजनैतिक वातावरण में सभी कुछ है। मगर मुझे डर और से नहीं, लग रहा है तो अपने आपसे।

सन् 1920 से 1945 तक जो राष्ट्रीय भावना और नैतिक बल की अभूतपूर्व लहर दिखाई दी थी वह आजादी के बाद सपना हो गई। समाजवादी भारत में इस समय व्यक्ति ही व्यक्ति दिखाई पड़ रहे हैं। समाज बहुत कम नजर आता है। व्यक्ति बड़ा बनना चाहता है, औरों पर छा जाना चाहता है। यह बात बुरी न लगती यदि वह औरों को छोटा न बनाता। पर इस समय सब तरफ आपा-धापी मची हुई है, जन साधारण को अपने लिए कही स्थान नहीं मिलता। समाज उखड़ा हुआ है, जनमन विघटित कुण्ठित है।

समाजवादी भारत सरकार की बागडोर इस समय कांग्रेस के हाथ में है। हमें गर्व है कि जवाहरलाल जी के रूप में भारत ही नहीं वरन् विश्वजन प्रिय शान्ति विधायक लोक नेता हमारे पास है और कांग्रेस आज उनके सामाजिक व्यक्तित्व का प्रमुख अग है। मगर इसीलिए तो और भी हैरत होती है कि फिर कांग्रेस इतनी निस्तेज क्यों है? यह जब गांधी जी के सामाजिक व्यक्तित्व का अग थी तब ऐसी व्यक्तित्वहीन न थी।

गांधी जी की समवयस्क पीढ़ी के अतिरिक्त दो अगली पीढ़िया भी उसमे सम्मिलित थीं। क्या जवाहरलाल जी की कांग्रेस भी यह दावा कर सकती है? बापू पीढ़ी ने अपने युवकों को दबाकर नही रखा उन्हें काम करना सिखाया, उनकी विद्रोही वृत्ति को सहा-समझा और उमसे बल लेकर उनमें आत्म विश्वास बढ़ाया। क्या जवाहरलाल जी और उनकी पीढ़ी जो अब बापू के स्थान पर है, अपनी छोटी पीढ़ी के साथ वही बर्ताव कर सकी? गांधी के व्यक्तित्व के प्रभाव से कांग्रेस नेता देश में त्याग बलिदान और सगठन की शक्ति प्रतिष्ठित कर रहे थे। जनमानस उनसे ऊंची प्रेरणा पाकर अनेक शक्ति स्रोतो के रूप में फूट-फूट पड़ता था। आज के शक्ति स्रोत ऐसे भूखे हैं कि नेहरू के बाद कौन? का प्रश्न उठ रहा है।

गुरुदेव की एक कविता में अस्ताचलगामी सूर्य पूछता है कि मेरे बाद मेरा काम कौन करेगा? जगत चित्रवत निरुत्तर रहता है। छोटा-सा मिट्टी का दीया विनयपूर्वक कहता है अपनी शक्ति भर वह काम मैं करूंगा। 'नेहरू के बाद कौन' के उत्तर में कहीं से ये सुनाई न दिया। स्वय नेहरू जी ने ही उत्तर देने के लिए

प्रश्न उठाया और कहा : नेहरू के बाद करोड़ों हैं, मैं करोड़ों को अपना काम सिखाऊंगा। कब चाहेंगे वे ऐसा ? कब उसकी फिजा पैदा करेंगे ? उनकी निगरानी में देश का नवनिर्माण बड़े पैमाने पर आरम्भ हुआ है। पर उनके देशवासियों की ललक इस नवनिर्माण के साथ क्यों नहीं ?

पिता पुत्र की दो पीढ़ियों का अदब बनाए रखते हुए अपनी भूलों और कमजोरियों को पहचानते हुए भी मुझे सविनय किन्तु सखेद कहना पड़ता है कि जवाहरलाल जी और उनकी पीढ़ी में यह भारी कमी है कि समाजवादी ढांचे का निर्माण करते हुए भी वे अपने आप में कोरे व्यक्ति हैं, ऊंच-नीच की मान्यताओं से भरे हुए निरे व्यक्ति। उनके व्यक्ति और सामाजिक व्यक्तित्वों में कहीं उचित समन्वय नहीं हो पा रहा है।

अब उस सरकार को भी देखें जिसके द्वारा जवाहरलाल जी समाजवादी ढांचा बना रहे हैं। सरकारी डिसिप्लिन की तस्वीर में हर बाबू अपने से बड़े बाबू अफसर का चपरासी है। यह चपरासियों की सरकार डिसिप्लिन के नाम पर ऊपर की घुड़की खाकर दांत निपोरती है और नीचे वाले को स्वयं घुड़ककर दांत निपोरने पर मजबूर करती है। डिमोक्रेसी के नाम पर अंग्रेज़ फाइलबाजी तो सिखा ही गए। इस चपरासी डिसिप्लिन द्वारा बाबू से लेकर चीफ तक का अहं कुण्ठित करना भी सिखा गए। डिमोक्रेसी की आड में फाइलशूर बनकर हर कर्मचारी अपनी कुचली अहंता का मरहम लगाता है। इस जड़ चपरासी डिसिप्लिन के कारण सरकारी मशीन का जो भी काम होता है वह विलम्ब से और निष्प्राण और इस सारे डिसिप्लिन का विधाता है चीफ व्यक्ति ऊंच-नीच की मान्यताओं से भरा दम्भी व्यक्ति। राष्ट्र के प्रति उसके श्रमदान में कमी नहीं ? मगर उसकी भावना समाजवादी ढांचे का निर्माण करने वाले की नहीं। वह जड़ सामन्ती अकड़ की है।

और देश के आर्थिक जीवन के कर्णधारों की तो क्या कहूं वहां तो सब व्यक्ति हैं ऊंच-नीच की मान्यताओं के शिखर सबके बाद सारी जनता है जो दबो और दबाओ नीति के साथ अपनी अनगिनत कुण्ठाओं को बड़े विकृत रूपों में उछाल रही है। इस ऊंच-नीच के भेदभाव से ग्रस्त भारत को सही दिशा के लिए एक सामाजिक आन्दोलन की उतनी ही जबर्दस्त आवश्यकता है, जितनी नहर बांध निर्माण करने वाली समाजवादी पंचवर्षीय योजनाओं की। दोनों को साथ-साथ चलाए बिना न तो भारत का जन मन ही शान्त रहेगा न उसकी प्रगति ही हो सकती है। पिछले सन् सत्तावन का मुर्दा सामन्तवाद अब सड़ चुका है, इस सन् सत्तावन में उसका दाह करना अत्यावश्यक है। अपनी और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर हावी होने के लिए ऋग्वेद के इस नारे को व्यापक बनाना सर्वथा अनिवार्य हो उठा है; 'राष्ट्रे जाग्रयाम वयम्', हम राष्ट्र में जागते रहें।

लो वह भी कह रहे हैं : ज़माना खराब है

पचास बरस पहले की एक बात याद आयी। एक रग्घू बाबा थे। वे उस समय 65-70 बरस के रहे होंगे। यानी जिस ज़माने में 45-50 की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते लोगों का शुमार बूढ़ों में होने लगता था उस जमाने में रग्घू बाबा की उम्र वाले लोग तो भीष्म पितामह की तरह जुलजुल बूढ़े माने जाते थे। रग्घू बाबा हम नवयुवकों को बड़े जोश से बतलाया करते थे : "क्या रखा है आज के ज़माने में, ससुरी पैसे की चार जलेबियां। अरे हमारे बचपन मे तो चार जलेबिया, एक पूड़ी, तरकारी, अचार, रायता सब कुछ सिरिफ एक पैसे मे मिलता था। रुपये का सोलह सेर दूध, तीन सेर का घी, बीस सेर का गेहूं। आमों की ढेरी—बड़ी दूधिया दशहरी-छह आने और छोटी दशहरी तो चवन्नी तीन आने में मिल जाती थी। क्या ज़माना था वो भी। अब तो लूट पड़ गयी है लूट। ऐसा खराब ज़माना आ लगा है कि कहते नहीं बनता।"

रग्घू बाबा की चाल पर हमारी पीढ़ी के लोग भी जो अब 60-65 के हो गए हैं, कहते हैं कि हमारा ज़माना अच्छा था : आज का खराब है। उस समय भी, खाली भावों मे फर्क आ गया था, बाकी सब सतजुग ही था। हमने 17 सेर के बजाय आठ सेर का दूध पिया था। दो पैसे का पाव भर दही और तीन-पैसे छिटांक बालाई खाई थी। बड़ी दूधिया दशहरी आमो की ढेरी यानी 33 आम बारह आने में आते थे। उस समय को देखते हुए हम आज की मंहगाई को कोसते हैं। सामाजिक रूप से भी इसका प्रभाव पड़ता है, जब महंगाई बढ़ती है, गरीबी और अभाव अधिक फैलते हैं, तो पाप या अपराधों में भी बढ़ोत्तरी होती है। ज़माना खराब कहलाने लगता है।

अभी कुछ दिनों ही पहले की बात है। एक भले घर की पढ़ी-लिखी युवती अपनी मां के साथ हमारी गली से गुजर रही थी। दो लड़के दूसरी गली से आए। बहुत इत्मीनान, बड़ी दोस्ती के भाव के साथ एक लड़के ने उस युवती के कंधे पर हाथ रख दिया। युवती चौंकी, चीखी मगर इतनी ही देर में लड़का अपने दोस्तों के साथ उसके गले की जंजीर खींचकर उड़न-छू हो चुका था। फिर राह चलतों की भीड़ जुड़ी ; किस्से चले—क्या ज़माना आ लगा है।

हम उस दिन संयोगवश ऊपर छोटे पुत्र के कमरे में थे, खिड़की से झांक रहे थे। यह तमाशा देखा, बातें सुनीं। बातों ने यादों के राकेट पर चढ़कर एक मिनट में ही बड़ी-बड़ी दूर की सैर कर ली। विश्वामित्र की कठिन तपस्या से इन्द्र को यह डर हुआ कि उनका इन्द्रासन हिल जायगा। राजनीति-पटु इन्द्र ने उनका धरम बिगाड़ने के लिए मेनका अप्सरा भेज दी। अब देखिए कि पद-लालसा का तमाशा उस वक्त में भी चल रहा था और शरीफ भले आदमियों का ईमान डिगाने वाली अप्सरायें भी उस ज़माने में थीं। फिर आज है भी क्या अचंभा। महाभारत के उस राज दरबार का ख्याल आया। जिसमें बैठकर राज-कुमार जुए की राजनीति के दांव चला करते थे। आज के ज़माने में यदि किसी राजसभा या जन-संसद में ऐसा तमाशा हो तो दुनिया भर के अखबार हफ्तों तक पेज पर पेज काले करते रहेंगे कि हाय क्या बुरा ज़माना आ गया है। और द्रोपदी के चीरहरण के से तमाशे के दोहराये जाने पर तो दुनिया में अखबारी बवंडर ही उठ खड़ा हो जाएगा। इस पर भी लोग कहते हैं कि नया ज़माना खराब और पुराना बड़ा अच्छा था। सुल्तान लोग हारे हुए राजा-बादशाहों की लड़कियां और औरतें उडा ले जाया करते थे, लेकिन आज अगर ऐसी घटनाएं होती हैं तो ज़माने को कोसा जाता है। कहने का मतलब यह है कि इंसान हमेशा यही समझता है कि दुनिया भर की सारी अच्छाई सिर्फ बीते हुए ज़माने में ही समाई हुई है, यानी पहले का समय बहुत अच्छा था। वैसे इस तरह के निराशा भरे चिंतन में भी एक जगह रचनात्मक इच्छा के सक्रिय बीज बेचारे रेगिस्तान में पड़े बीजों की तरह निष्क्रिय हो रहे हैं। ज़माने को बुरा कहते हैं वे उसे अच्छा बनाने को भी कहते हैं। बौद्धिक आलस्यवश या कह लीजिए, उचित और शक्तिशाली नेतृत्व की कमी के कारण वह लोक कामना सक्रिय नहीं हो पा रही है। इसलिए ज़माना खराब है।

सुनते हैं, हमारे शहर के बड़े इमामबाड़े को नवाब आसफुद्दौला ने भीषण अकाल के दिनों में अपनी प्रजा को सहायता देने के लिए बनवाया था और उस काल के बारे में हमने यह भी पढा है कि रुपये का पांच सेर गेहूं बिक रहा था—और आज सन् 79 में एक रुपये तीस पैसे किलो का भाव है। तो बतलाइए भला, कौन-सा ज़माना बुरा था या है। अजी दूर कहां जाएं, अभी सन् 43 में जब अविभाजित बंगाल में अकाल पड़ा और चावल रुपये का दो सेर बिकने लगा तो हम लोगों ने नौजवानी के जोश में गले फाड़-फाड़ कर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ नारे लगाए थे कि कमबख्त कैसा खराब ज़माना लाए हैं। लेकिन अब क्या कहें। ज़माना हमारा है और महंगाई के लिहाज से पहले के तमाम ज़मानों से ज्यादा खराब है। उसी के, ज़माने की उपलब्धियों को हमारी नज़र देखने से कतरा जाती है। हमारी पत्नी एक बार कहने लगीं कि अब तो ऐसा खराब ज़माना

आ लगा है कि पैसे ले के आओ फिर भी चीज़ नहीं मिलती। हमने उनसे कहा कि लड़ाई के बाद जर्मनी में एक डबलरोटी खरीदने के वास्ते लोग झोला भरकर नोटों की गड्डियां ले जाते थे। मेरी पत्नी अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर बोलीं, "न बाबा, ईश्वर न करे ऐसा खराब ज़माना कभी आए।" हमें पहुंचे हुए पंडित-दार्शनिकों की यह बात याद आती है कि तुम्हें आज जो कुछ घटता दिखलायी दे रहा है वह अदृश्य में पहले ही घट चुका होता है और आगे भी घटता रहेगा। यानी इंसान की जिन्दगी कोल्हू के बैल की तरह है कि कोसों चक्कर काटो मगर फासला कभी कम या अधिक नहीं होता है। ज़माना हमेशा खराब है, खराब था और खराब ही रहेगा---या यों भी कह लीजिए कि सदा अच्छा था, अच्छा है और अच्छा ही रहेगा। बात में कोई फर्क नहीं पड़ता।

सम्राट अशोक या सम्राट अकबर दुनिया में भले ही सोने की सेजों पर सोये हों मगर आज के से रबड़ या फोम के मुलायम गद्दे उन्हें भी नसीब न हुए होंगे। उन्होंने घोड़े हांके या रथ, हाथियों पर चढ़े मगर न हवाई जहाजों का मज़ा पा सके और न गोमती एक्सप्रेस के एयरकण्डिशन्ड कोच का। आज जो अकबर-अशोक होते तो किस ज़माने को भला कहते और किसको बुरा?

खैर, जो भी हो, मगर उस वक्त मन ही मन हमें बड़ी जोर की हंसी आती जब कोई अफसरनुमा नेता दफ्तरों से लेकर छात्रों तक की अनुशासनहीनता पर घड़ियाली टेसुवे बहाता है या कोई धन्ना सेठ जब महंगाई का रोना रोकर ज़माने को कोसता है। जिन्होंने ज़माने को इस तरह बनाया लो, अब वह भी कह रहे हैं कि ज़माना खराब है।

(1980)

तीतर, बटेर और बुलबुल लड़ाना

यह मुमकिन है कि शान्ति के कबूतर उड़ाते-उड़ाते हम एटम हाइड्रोजन मिज़ाइल किस्म के भयानक हथियारों और आस्मानी दर आस्मानी करिश्मों के औज़ारों की लड़ाई बन्द कराने में सफल हो जाएं, मगर यह कि लड़ाई का चलन ही दुनिया से उठ जाएगा, हम न मानेंगे जनाब ! अजी, लड़ाई का मजा चार जवान नज़रों से पूछिए, नवोढ़ा प्रौढ़ा सुहागिनों के मानभरे मुंहफुलावन से पूछिए, सितार और मिज़राब से पूछिए, घुंघरुओं और इंसान के पैरों से पूछिए, इल्मोहुनर की लागडांट करने वालों से पूछिए, एलेक्शन लड़ने वालों से, वकील-बैरिस्टरों की ज़बानों से, पार्टीबाज़ों की तूतू-मैंमैं से पूछ देखिए—कोई भी न चाहेगा कि लड़ाई का चलन उठा दिया जाए। सच पूछिए तो लड़ाई का दूसरा नाम ही जीवन का विकास है; ग्रह-उपग्रहों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के बावजूद इंसान लड़ने से बाज़ न आएगा। जब तक दाल-तरकारी में नमक की ज़रूरत रहेगी तब तक सभ्यता का हाज़मा दुरुस्त रखने के लिए हम गालियों का इस्तेमाल भी करते रहेंगे, जब विटामिन की टिकियों से पेट भरने लगेगा तब भी ताने देने की बात तो मेरे खयाल से न छूटेगी। मतलब यह कि विश्वशान्ति, ब्रह्माण्ड शान्ति आदि ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः का साम्राज्य दसों दिशाओं में फैल जाए, फिर भी ज्ञान-विज्ञान की ऊंची-ऊंची चोटियों पर चढ़ने के लिए मनुष्य निरन्तर लड़ता ही रहेगा।

प्रकृति के बच्चों में सिर्फ आदमी ही लड़ता हो सो बात नहीं, छोटे-बड़े चेरिन्दे-परिन्दे भी कटाजुज्झ करते ही रहते हैं। इनकी लड़ाइयों में मानवी सभ्यता ने सदियों तक लुत्फ हासिल किया है। पुराने ज़माने में ही नागर सभ्यता ने जानवरों की लड़ाई को कला और शास्त्रविद्या तक पहुंचा दिया था। वात्स्यायन के कामसूत्र में लिखा है कि जानवरों की लड़ाई देखना रसिया रईसों के लिए टॉनिक का काम करता है। इसलिए पुराने दिनों के सम्राट बादशाह जानवरों की लड़ाइयां बड़े शौक से देखा करते थे। हमारे नगर, लखनऊ, में भी नवाबी बादशाही ज़माने से इसके संस्कार चले आते हैं। नसीरुद्दीन हैदर को पशु-पक्षी के युद्धों का बड़ा चाव था। चांदगंज में पशुशाला थी, हाथी, ऊंट, गैंडे, चीते, सांड,

भैंसों से लेकर तीतर, बटेर, मुर्ग, बुलबुल आदि तक की लड़ाइयां उसका मनोरंजन करती थीं। एक ज़माना था जब यहां बटेरों और तवायफों की बादशाही थी।

खैर, इस समय तो बुलबुल, बटेरों और तीतरों का तज़किरा छिड़ा है। इनकी लड़ाइयां भी खूब-खूब होती हैं, चोंचें चलती हैं, ये परिन्दे आपस में एक-दूसरे पर झपट-झपटकर वार करते हैं, चारों तरफ इंसान तमाशाइयों की भीड़ खड़ी होकर इनका हौसला बढ़ाती है, "और ले बेटे! काट ले और काट ले! हुमक के! जियो बेटे, वाह वाह!" का समां बंध जाता है। इनकी हार-जीत पर सैकड़ों-हज़ारों का सट्टा हो जाता है। गरज़ यह कि इन पंछियों की लड़ाइयों का भाव रुपये, आने, पाई से अब तक बंधा है। इसीलिए लड़ाकू परिन्दों की खुराक और देख-सम्भाल में उनके पालने वाले दिल खोलकर खर्च करते हैं। इनके उस्ताद और खलीफा होते हैं, दंगल उस्तादों के नाम से होते हैं; इनकी हारी-बीमारी, चोट-चपेट के लिए दवाएं हैं, शक्तिदाता जड़ी-बूटियां हैं, पालने और लड़ाने के नियम हैं, पोथियां हैं—यानी कि वह सब टीमटाम है जो मनुष्य के शौक और सट्टे के सिद्धान्तों का समन्वय करती है।

वैसे हमें न तो सट्टे का शौक है और न जानवर पालने का। सच पूछिए तो हमारी ऐसी हैसियत ही नहीं। हम आमतौर पर उन्ही जानवरों की लडाइयां देख पाते हैं जो हमारे-आपके घरों मे बरबस बस जाते हैं, मसलन चीटी, चूहे, मक्खी, मच्छर, खटमल वगैरह। दाना ले जाती हुई एक चींटी से दूसरी चींटी की रस्सा-कशी, चूहों की चू-चूं और उछल-कूद-मार, मच्छरों का भन्ना-भन्नाकर एक-दूसरे पर वार करना अपना एक अन्दाज़ तो रखता ही है; मगर इनकी चर्चा बेकार है क्योंकि इनकी लड़ाइयों पर सट्टा नही होता।

भगवान भला करे हमारे पुराने प्रालितेरियन पड़ोसी कादिर भाई का, जिनकी बदौलत तीतर, बटेर और बुलबुलो के दंगल हमें देखने को अक्सर मिल जाते हैं। उनकी दुकान के सामने फुटपाथ पर कोई मौसम नही जाता जबकि एक न एक दंगल न होता हो। खयालगोई के दंगल, तीतर, बटेर, बुलबुल, मुर्ग, और अगिन चिड़िया के दंगल, बारहमासियों के दंगल—कुछ न कुछ होता ही रहता है। चलती सड़क से जन-जनार्दन सिमटकर जब भी 'वाह वाह' और 'लपक के बेटे' का आकाशफोड़ शोर मचाते हैं तो हम सारे 'इज़्मों' से पगहिया तुड़ाकर अपने छज्जे पर खड़े हो इनका तमाशा देखने से चूक नही सकते। अहिंसा के सिद्धान्त को मानते हुए भी इन लड़ाइयो के मज़े से हम इनकार नहीं कर सकते।

तो आइए, पहले बटेरों पर ही बातचीत हो जाए। यह मैं निवेदन कर चुका हूं कि नवाबी लखनऊ में बटेरो की बादशाहत थी। पण्डित रतननाथ दर 'सरशार' अपनी 'आज़ाद कथा' में सफशिकन के बहाने लखनऊ के बटेर को अमर कर गए हैं।

वैसे इन पंछियों की लड़ाई का मौसम कार्तिक गंगानहान से लेकर फागुन तक होता है, मगर बटेर गर्मी और सर्दी दोनों ही ऋतुओं में लड़ते हैं। दोनों ऋतुओं में बटेरों की जातियां भी अलग-अलग होती हैं। गर्मी में 'चिनख' बटेर लड़ता है और जाड़ों में 'घाघर'। चिनख घाघर से छोटा होता है और वजन में छटांक-डेढ़ छटांक का होता है। चिनख की चार किस्में होती हैं; चिनख पोटिया, घाघर पोटिया, असल चिनख और कलपोटिया। घाघर पोटिया चिनख और घाघर की संकर जाति है। ये चारों किस्म के बटेर गर्मी के मौसम में ही मस्ताते हैं।

सर्दी में घाघर लड़ाया जाता है। यह चिनख से बड़ा और तोल में आध पाव ढाई छटांक तक का होता है। इसकी दो किस्म होती हैं, असल घाघर और चिनख घाघर की संकर जाति घाघर पोटिया।

लड़ाकू बटेरों की परवरिश में बड़ी लागत लगाई जाती है। काकुन तो ये चुगते ही हैं, लड़ाने की तैयारी में इन्हें मेवे, केसर, मुश्क और जड़ी-बूटियां भी खिलाई जाती हैं।

इनकी कावुकों में चूल्हे की राख या छनी हुई बारीक मिट्टी बिछा दी जाती है, जिसमें लोट-लोटकर ये अपनी मस्ती बढ़ाते हैं। इन्हें नहलाया जाता है, आवश्यकतानुसार धूप-छांह भी दी जाती है। चैत में इनके बच्चे पैदा होते हैं; वे चैंतुवे कहलाते हैं। साल दो साल पुराने पोढ़े बटेर कुरीज कहलाते हैं, जो बाकी चालू फसल मे लिए जाते है वे 'नए' कहलाते हैं। ये तीनो आपस में लड़ाए जाते हैं। घर में लड़-लड़कर पोढ़े होते हैं; जो बहादुर निकलते हैं वे दंगलों में भेजे जाते हैं। लड़वैये बटेरों की चोंचें उस्तरे से बारीक बनाई जाती हैं ताकि उम्दा मार कर सके।

बटेरो की लड़ाई देखने में बड़ी सनसनीखेज होती है। ये नन्हा बूटेदार कत्थई या काले रंग का पहाड़ी जानवर अपने प्रतिद्वन्द्वी को देख पर फुलाते और बड़ी शान से पैंतरे बदलते हुए अचानक उछलकर वार करता है, कभी खीच मारता है, कभी मुर्री लगाता है, कभी फाड़ता है तो कभी दुश्मन को आंखों मे चोंच मारता है या उसकी चोंच नोडता है। लडते-लडते बटेर लहूलुहान हो जाते हैं, जितना लड़ते हैं उतना गरमाते हैं। हरैला वटेर जीतने वाले से अपनी जान छुड़ाकर सीधा नोक-दम पाली बाहर भागता है, वरना जीतने वाला उसकी जान न छोडे।

अब तीतरों की बात सुनिए। टीले मैदानों में तीतर चुगते, खाली पिंजरा लिए 'लियो वेटे हुई-हुई' की हांक मारते तीतर-प्रेमीजन गली-मुहल्लों और गांव-खेड़ों में आपने अक्सर देखे होंगे। तीतर बड़ा मस्त और ताकतवर जानवर होता है। वह चैत में पैदा होता है और सर्दी में मस्त होकर लड़ता है। लड़वैये तीतरों की खुराक भी बटेर की तरह कीमती होती है। वैसे इसे मिट्टी, आटा और दीमक भी चुगाया जाता है। पालने वाले अपने घरों में इनके लिए एक नलची-सी बना

कर उसमें बारीक मिट्टी भर देते हैं ताकि ये खूब लोटें-पोटें। गर्मी में पानी से तर बालू भर देते हैं। इनकी चार जातियां होती हैं और चार किस्में। ये देसी, गंगा-पारी, दक्खिनी और दोगली जातियों के होते हैं। रंग-भेद के अनुसार ये भूरिया, मेहंदिया, करौंदिया और काले कहलाते हैं। इनकी लड़ाई के दांव-पेंच भी देखने के काबिल होते हैं। ये अपने दुश्मन की आंख काटते हैं, चोंच में चोंच डालकर ज़बान काटते हैं, जिसे 'कुफल मारना' कहा जाता है, दुश्मन की खोपड़ी में चोंच मारने को 'डक मारना' कहते हैं, एक ही स्थल पर बराबर आघात किए जाने का टेक्निकल नाम 'एक ठौर मारना' है और चंचल गति से दुश्मन के शरीर के हर भाग पर आघात करने को 'फड़कमार' कहते हैं।

अब दास्ताने बुलबुल सुनिए। सर्दी में पीतल के अड्डों पर बुलबुल लिए इनके शौकीन भी आपको अक्सर मिल जाएंगे। इनकी चार किस्में होती हैं, सफेद, काला, काला-सफेद और तौखी। अमरूदों के बाग में अक्सर ये पाए जाते हैं। इनका भोजन अधिक कीमती नहीं होता। भुने हुए चने का बेसन इन्हें खिलाया जाता है। जब लड़ना होता है तो दस-बारह घंटे पहले से इन्हें भूखा रक्खा जाता है। प्रतिद्वन्द्वी को देखते ही ये भूखे बुलबुल एक-दूसरे पर झपट पड़ते हैं, एक पंजे से चोंच और दूसरे से पंजा पकड़कर ये गुथ जाते हैं। जो ताकतवर होता है वह कमज़ोर को दबाकर पड़ जाता है और कमज़ोर उसके पंजों से छूटने के लिए जी-जान से प्रयत्न करता है।

इनकी परिचर्या भी बड़ी सावधानी से होती है। अड्डे पर लिए-लिए इन्हें बराबर घर-बाहर घुमाया और उड़ाया जाता है। इन्हें दंगलों में लड़ाने के लिए यह आवश्यक होता है कि एक ही जगह रखकर लड़ाने की प्रैक्टिस न की जाए, वरना ये दूसरी जगह न लड़ेंगे। हारा हुआ बुलबुल मुह घुमाकर बैठ जाता है, विजयी से नज़रें नहीं मिलाता।

इस तरह तरह-तरह के शौक हैं, शौकों के पीछे आदमी तबाह है और तबाही मे लड़ाई की बात तो आ ही जाती है।

(1967)

अगर आदमी के दुम होती

मनुष्य की एक आदत होती है, जिन बातों की उसे कुदरती चाहना हुआ करती है उन्हें वह सबसे पहले अपने साहित्य में प्रदर्शित करता है। प्रमाण के लिए चन्द्रमा की बात ही ले लीजिये, आज तो इंसान ने करीब-करीब उसे पा ही लिया है, परन्तु सदियों पहले ही साहित्य में उसकी यह तड़प तरह-तरह से प्रकट हो चुकी थी। चांद को न देख पाने वाले बेचारे अंधे महाकवि सूरदास तक मनुष्य की उस कुदरती चाहना के गीत गा गये कि 'मैया मैं तो चन्द खिलौना लेहों।' इसी प्रकार दुमदार बनने की चाहना भी कुदरती तौर पर मनुष्य जाति की रही है। चूंकि भगवान ने मनुष्य को सचमुच ही दुम नहीं दी इसलिये उसने दुम सम्बन्धी कई मुहावरे बना डाले। हम आप सभी अक्सर मौका पड़ने पर कहा करते हैं: वो देखो, वो आदमी कैसा दुम दबाए भागा जा रहा है। या फलाना तो फलाने के आगे सदा दुम ही हिलाता रहता है। इसके अलावा आपने दुमछल्ला या पुछल्ला शब्दों का प्रयोग भी अक्सर किसी न किसी के लिए किया ही होगा। इससे यह साबित होता है कि आदमी केवल दुम ही नहीं चाहता बल्कि अपनी दुम को सजाना भी चाहता है। बछेड़े भी दुमें उठाये हुए किलोले मारते हैं, बिल्लियां जब क्रोध में उन्हें तान-तान कर एक-दूसरे पर गुर्राती हैं या बन्दर जब मुंडेरों पर अपनी-अपनी दुमें पटका कर सानन्द बैठते हैं तो कितना सुहाना मालूम होता है।

अगर आदमी के दुम होती तो सोचिये कि लोग-लुगाइयों के फैशनों में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते। हजरतगंज, कनाट प्लेस, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क या मास्को आदि की सड़कों पर लोग-लुगाइयां शाम को अपनी-अपनी दुमें उठाते हुए गंजिंग किया करते, कैसा भला लगता। तब औरतों की दो चोटियों में रिबन तो लटकते ही रहते मगर तीसरा रिबन उनकी दुमों को भी बहार दिया करता। जब चलतीं तो पीछे से लगता दो-तीन रिबनदार दुमों वाली ट्राईसिकिल जा रही है। पीठ पर चोटियां लहरातीं, जमीन पर दुम लहरातीं सच मानिये, आशिकों का हुजूम बढ़ जाता।

आदमी के अगर दुम होती तो उसका रूप ही निखर उठता यानी कुछ का

कुछ होता। उस रूप को पाने के लिए हमारा यह प्रस्ताव है कि आदमी की दुम उगाई जाए।

हम जानते हैं कि इस दुम के प्रस्ताव पर आप लोग हंस पड़ेंगे, मगर तनिक सोचिये तो सही कि दुमदार आदमी की शान ही कुछ और होती। आजकल अखबारों में चित्र छपते हैं अक्सर उनमें बड़े-बड़े जुलूसों के चित्र आप देखते ही होंगे। आपने यह भी गौर किया होगा कि लोग बांस की खपच्चियो पर नारे वाले पोस्टर बाध कर उन्हें उठाये-उठाये चलते हैं। अगर दुमें होतीं तो ये नारों वाले पोस्टर लोग बाग अपनी दुमों में बांधकर निकाला करते। इससे कई लाभ होते—एक तो यह कि बांसों की राष्ट्रीय 'इकॅानामी' हो जाती और दूसरे यह कि नारो की सचाई और बढ़ जाती। मान लीजिये कि पोस्टर पर लिखा है कि 'हमारी मांगें पूरी हों।' अब सवाल यह उठता है कि किस की मांगे पूरी हों। बांसों की ? अगर दुमों मे पोस्टर लटकते होते तो यह प्रश्न ही न उठता। आप कह सकते हैं बजाय बांसों के मांगें दुमों की कही जातीं, मनुष्य से फिर भी उनका सीधा सम्बन्ध न होता। मगर नही, यो सोचना ही गलत है, क्योंकि बांस तो आज की तरह तब भी धरती से ही निकलता, लेकिन दुम आदमियों के ही निकला करती।

दुम होती तो और कई फायदे थे। मसलन सिनेमा में प्रेम दृश्यों की महिमा बढ़ जाती। हीरो-हीरोइन मुहब्बत का गीत गा कर सीन के आखिरी शाट में जब प्रेमोन्मत्त होकर अपनी भाव विभोर दुमें हवा में फरफराते हुए उन्हें एक-दूसरे मे रस्सी की तरह गूथना शुरू करते तो सारा हाल तालियो की गड़गड़ाहट से गूंज उठा करता। दर्शकों की दुमे अपनी-अपनी कुरसियों पर फटाफट दाए-बाए लगतीं। दुमों के सिरों पर उगे हुए बालों के गुच्छे आस-पास के दर्शकों को सहलाने लगते। बड़ा प्यार, बडा भाईचारा बढता।

दुम से और भी कई फायदे होते। आज अनेक देशो की सरकारों को मलेरिया उन्मूलन के लिये मच्छरों से लड़ना पड़ रहा है। लाखों करोड़ों रुपयों की दवाएँ छिडकी जाती है मगर मच्छर कम नही होते और मलेरिया बढ़ता ही जाता है। अगर आदमी के दुम होती तो ये समस्या चुटकी बजाते हल हो जाती। गाय-बैलो को कभी आपने गौर से देखा होगा, मच्छर उनकी पीठ पर बैठता है, जब तक वो तफरीह करता है तब तक तो उनके रोओ मे फुरफुरी उठती रहती है, मगर ज्योंही उसने डक गड़ाने की कोशिश की नहीं कि फट से दुम का कोडा पड़ता है। इसीलिए आपने आज तक कभी किसी दुमदार को मलेरिया होते न देखा होगा न सुना होगा। यह केवल के बेदुम आदमियों को ही होता है। इसी तरह दुम से मक्खियो का नाश भी किया जा सकता है।

दुम होती तो एक और भी बड़ा अच्छा दृश्य देखने को मिला करता।

कल्पना कीजिये कि दफ्तर के एक कमरे में चपरासी, बाबू, बड़े बाबू, साहब और छोटे साहब सब एक साथ मौजूद हैं और बाबू की दुम बड़े बाबू के आगे हिल रही है, बड़े बाबू की दुम साहब के आगे और साहब की दुम बड़े साहब के आगे हिल रही है। और बेचारा चपरासी इन बड़े-बड़े दुमदारों के तुफैल में चारों ओर खुशामद में अपनी दुम लहरा रहा है। बड़ा मजा आता। दुमें होती तो यार लोग बजाय एक दूसरे के कन्धों पर हाथ रखने के घनिष्ठता से दुमें जोड़-जोड़ कर चला करते।

यदि मानवता की दृष्टि से देखिये तो भी दुम का महत्त्व चौगुना-अठगुना बढ जाता है। आपने रामायण में पढा होगा कि जब अहिरावण भगवान् रामचन्द्र और श्री लक्ष्मण जो को सोते में उठा ले गया तो हनुमान जी उनकी रक्षा के लिए दौड़े-दौड़े गये। हनुमान जी के पास दुम थी इसलिए फौरन उसे बढा-बढ़ा कर एक किला बनाया और उसमें सोते हुए भगवान् और लक्ष्मण जी को सुरक्षित करके आप पहरे पर बैठ गये। सर्दी, बरसात की रातों मे फुटपाथ पर सोने वाले असहायों को जब हम देखते हैं तो मानवता की भावना से प्रेरित होकर यह बात मन में उठती है, काश कि हमारे भी हनुमान जी ऐसी दुम होती तो हम फौरन उसका सायबान बनाकर जहां-तहां खड़े हो जाया करते। अब तक एक ही चित्र लोगों के सामने है, वह ये कि भगवान् कृष्ण छगुलिया पर गिरि गोवर्धन उठाये बाढ़ पीडितों की रक्षा कर रहे हैं, लेकिन अगर हमारे दुम होती तो लखनऊ में बाढ़ आने पर अपनी दुम का सायबान बनाये हुए हम सब अवश्य ही शरणार्थी कैम्प चलाते। फोटोग्राफर हमारी तिरंगी फोटुएं लेते और घर-घर में हमारी तस्वीर टंगी होती। अब तक लोग केवल बजरंगबली के लिए ही श्रद्धापूर्वक कहा करते हैं कि 'बोल लम्बी पूछ वाले की जय!' तब हमारी शान मे भी इसी तरह की जय-जयकारें बोली जाती।

आदमी की दुम के बारे में इतनी देर से तरह-तरह के ख्याल दौड़ाते हुए, सच मानियेगा कि अब तो हम एकाएक उसके लिए तडपने लगे हैं। वैज्ञानिकों से हमारी अपील है कि विश्व मानव का शारीरिक और आत्मिक सौन्दर्य बढ़ाने के लिए इसान को दुमदार बनाने की तरकीब सोचें। आजकल नेत्रदान, रक्तदान आदि तरह-तरह के दान मनुष्य लोग किया करते हैं, मेरा ख्याल है कि अगर 'पशु-सम्पर्क-समाज' की स्थापना करके हम लोग मरते पशुओं से ये अपील करें कि मानव सौन्दर्य की वृद्धि के लिए आप लोग अपनी दुमें दान कर दीजिये तो कभी न कभी उनको हृदय-परिवर्तन भी हो ही जायेगा और वे अति उदार होकर पशु-जगत मे दुम-दान-आन्दोलन चला देंगे। लेकिन यही एक खराबी समझ में आने लगी है। मान लीजिये कि अगर किसी मनुष्य को कुत्ते की दुम लगाई गयी। तो वह बारह बरसों तक धरती मे गड़ी रहने के बाद भी टेढ़ी की टेढ़ी ही रहेगी।

एक दूसरी खराबी यह भी होगी कि आज के जो बड़े-बड़े नेता, अफसर, साहित्यिक, कलाकार, करोड़पति आदि बाहर बड़े-बड़े रोब झाड़कर घरों में घुसते ही अपनी पत्नियों के आगे दुम हिलाने पर मजबूर हो जाते हैं, उनकी सामाजिक रूप से कलई खुल जायेगी।

नहीं साहब नहीं, हम किसी बड़े आदमी की इज्जत नहीं लेना चाहते। क्योंकि हमारा प्रस्ताव सुनते ही वे हाथ जोड़-जाड़ कर यही चिल्लाने लगेंगे कि 'बख्शो बिलार हम लंडूरे ही भले।'

(1966)

अगर पत्रकार न होते तो क्या होता···

—"न होते तो क्या होता ?" सवाल जितना प्यारा है, उतना ही पेचीदा भी। खुदा न ख्वास्ता कोई हमसे ही यह पूछ बैठे कि हजरत अगर आप न होते तो क्या होता ! हम भला इसका क्या जवाब दे सकते हैं। ज्यादा से ज्यादा यही कह सकेंगे कि अगर हम न होते तो दुनिया की आबादी में एक आदमी कम होता, राशन दफ्तर को एक कार्ड कम बनाना पड़ता और हमारी बीवी को एक आदमी की रोटियां न बनानी पड़तीं। मगर यहीं तो एक उलझन आन के पड़ती है। अक्लमन्द टोक देते है कि मियां, अगर तुम न होते तो तुम्हारी बीवी कहां से होती ?

हम अपना न होना तो बर्दाश्त कर सकते हैं मगर बीवी न हो—यह ख्याल भी काबिले बर्दाश्त नहीं। इसी तरह हम यह तो मान सकते हैं कि अगर पत्रकार न होते तो दुनिया का कुछ न बिगड़ता, मगर कोई यह कहे कि पत्र न होते···तो भाई साहब, हम इस बात को सुनने से भी इन्कार कर देंगे। बीवी और अखबार ···ये दो चीजें ही अगर न होतीं तो ईश्वर की बनाई इस अल्लटप्पू-सी दुनिया में रस ही कहां होता ? बीबी न होती तो बच्चे न होते और अखबार न होते तो खबरें न होतीं। तो फिर दुनिया बढ़ती कैसे ? ये लड़ाइयां क्यों होतीं, महंगाई क्यों होती, साम्राज्यवाद से दुनिया डिमोक्रेटिक समाजवाद तक क्यों कर आगे बढ़ पाती ? इसलिए झगड़ा ताक में रखकर यह मान ही लिया जाय कि बीवी और अखबार···ये दो चीजें ऐसी हैं जिन्हें प्रगतिशील से भी प्रगतिशील दुनिया में नहीं हटाया जा सकता। और जब बीवी मौजूद है तो हम भी हैं, अखबार हैं, तो पत्रकार भी हैं।

इस पर भी अगर आप ज़िद करें तो मैं यहीं कहूंगा कि अगर मुर्गे न होते तो सबेरा कैसे होता। और अगर पत्रकार न होते तो ये लकड़बग्घे और भेड़िये अपने घरों को छोड़कर, शहरों में पब्लिसिटी के भूखे बनकर भला क्यों आते ?

आज की दुनिया में लकड़बग्घों से लेकर नेताओं तक सबको पत्रकारों की जरूरत है। पत्रकार न हों तो बड़े लोग किसके पेट का कंटोप पहनकर धर्मवीर और दानवीर बनें। इस तरह पत्रकार नेताओं के लिए भी बहुत जरूरी हैं। पल-

पल पर जरूरी हैं। छींक आने से लेकर मौत आने तक उनकी जरूरत बनी ही रहती है। नेता डाक्टर के बगैर तो मर भी सकता है, मगर पत्रकार के बगैर वह मरना भी पसन्द न करेगा। हम रहें, न रहें मगर हमारी चर्चा तो बनी रहे··· यह रोमानी ख्याल बड़े आदमियों में रोग बनकर पलता है। छपास की बीमारी का यह हाल है कि हर बड़े शहर में आजकल हर कान्फ्रेंस से ज्यादा प्रेस कान्फ्रेंस होती है। आप अगर बड़े आदमी है और अगर आपने इत्तफाक से कुछ मक्खियां मार ली हैं, तो आपके मुसाहब हौसला बढ़ाते हुए कहेंगे कि हुजूर, आपने बड़ी हिम्मत और हौसले का काम किया है। शेर पर निशाना साधना आसान है, मगर मक्खियों को बार-बार पकड़ कर चुटकी मे दवा देना कोई आप ऐसा बिरला ही कर सकता है। इसलिए चट से एक प्रेस कान्फ्रेंस बुलवा लीजिए। बढ़िया चाय, उम्दा नमकीन और आला मिठाइयां कल सबेरे ही अखबारों से आपको तीसमारखां का खिताब दिलवा देंगी।

इसी से अनुमान कर लीजिए कि अगर पत्रकार न होते तो आपको बड़ा आदमी कौन बनाता ? और अगर आप बड़े न बनते तो दुनिया मे मुनाफाखोरी और महायुद्धों की परम्परा कैसे कायम रहती और इसी से आप यह भी अनुमान कर लीजिए कि पत्रकार कितने भोले जीव होते है। जरा सा जलपान पाकर ही वे आप पर महान सम्मान निछावर कर देते है। सच है, सीधे न हो तो टेढ़ो की दुनिया फले कैसे ? ये रौबदाब, हा-हजूरी, ये तेवर, ये गुस्सा, ये अत्याचार भला किस तरह और किस पर हो ? इसलिए जब तक दुनिया को टेढ़ापन भाता है तब तक पत्रकारो को यूँ ही सीधा रहना पड़ेगा। उनको इस तरह सीधा रखने के लिए बड़ी सुन्दर शिक्षा व्यवस्था की गई है। नौकरी से छुड़ा दिए जाने का डर हथकड़ी-बेड़ी की तरह इन सीधे पत्रकारो के हाथ-पैरों को जकड़े हुए है, धमकी और अपमान सगीनो को पेट मे गड़ाकर चौबीसो घंटे उन्हें सतर्क सीधा बनाये रखा जाता है, और इस पर भी अगर ये सीधा पत्रकार जो कही टेढ़ा बन जाने की जुरअत कर जाय, तो उसके लिए टेढ़ो ने दुनिया का महगाई की बड़ी ऊँची चहार-दीवारी मे बाधकर किसी नात्सी जेल से भी बदतर बना रखा है। इतनी सुन्दर शिक्षा व्यवस्था से हमारा आज का समाज सचालित है कि उससे बचकर कोई सीधा निकल ही नही सकता। चाहे वह पत्रकार हो, या इंसान, हैवान·· कोई हो।

मगर पत्रकार को इंसान और हैवान दोनों ही से जुदा करके देखने की जरूरत है। इसलिए नहीं कि वह दोनों से जुदा है, मगर इसलिए कि उसका पेशा महत्त्वपूर्ण है। अगर दुनिया में इंसान है तो पत्रकारों में भी हैं और हैवानों की हैवानियत से होड़ लगाने में भी हमारे भाई पत्रकार हरदम कलम की ताल ठोंके खड़े रहते हैं। रुपयों की लालच में पड़कर, और कभी-कभी तो बहुत छोटी-सी

लालच के लिए ही पत्रकार लोग अपना और सारी मानवता का आत्म-सम्मान गिरवी रख देते हैं। बुद्धि और चेतना को बालाए ताक रखकर वे बड़ी अन्धाधुंधी के साथ बात का बतंगड़ बनाते हैं और जब इनके करतबों से कहीं आग लगती है तो नीरो की तरह से खुश होकर बीन बजाते हैं : राष्ट्रों को मिलाए रखना या लड़वा देने का काम इन्ही कलमशूरों का है।

पत्रकारों में साहसी, दुस्साहसी और कर्मवीर भी होते हैं। पत्रकारिता के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिनसे अपने पेशे के प्रति इनकी जबर-दस्त नमकहलाली का परिचय मिलता है। जहां तक पहुंचकर रवि और कवि भी अपना रिकार्ड नही स्थापित कर सकते, वहां पर पत्रकार पहुंच जाता है।

पत्रकारिता की मशीन का सबसे चलता पुर्जा रिपोर्टर होता है। आपने शायद देखे भी होंगे ये रिपोर्टर। यह वह शय हैं जो बडी-बड़ी मीटिंगों में भीड, धक्कम-मुक्को और हुल्लड मे चुपचाप अपनी कलम और पेंसिल चलाते रहते हैं। धक्के खाते है मगर घुस के तमाशा देखते है। और यह धक्के-मुक्की मान-अपमान वे अपने लिए नहीं सहते, या जनता के लिए और या फिर अपने मालिक के लिए। यह कर्मयोगी न होते, तो आप यकीन मानिए कि नेता तो होते मगर उनकी विश्व-व्यापी वकत न होती, राष्ट्रव्यापी प्रभाव न होता।

रिपोर्टर ऐसे भी होते है, जो अपनी नोटबुक और पेंसिल जेब में रक्खे हुए आवारागर्दी किया करते है, घटनाए अगर आंख के सामने पड़ ही गई तो क्या किया जाय मजबूरी है, वैसे आम तौर पर वे सोर्सेज (जरियों) से ही पा लिया करते है। और अगर इत्तफाक से, आलस्य या यारबाशी या रेस्ट्रां, काफी हाउसों मे बैठे रहने की वजह से कोई खबर शाम तक न जुटा सकें तो फिर सिगरेट के धुए मे जैसी भी तस्वीर देख ली वैसी ही खबर रंग देते हैं। नतीजा फिर चाहे जो कुछ भी हो।

रिपोर्टर ऐसे भी हैं जो अपनी जान पर खेलकर सच को मात पर्दों से बाहर निकाल लाये। हकीकत को पाने के लिए वे चोर-डाकू, षड्यन्त्रकारी सभी कुछ बन जाते हैं। बियाबान जंगलों से होकर वह अपनी राह निकाल लेते हैं। बर्फ से गलते हुए पहाड़ों के अन्दर भी खबर पाने का जोश इनको गरमाए रहता है। ईमानदारी की हद है कि अपनी जान देकर भी यह अखबारो को सच्ची खबर देते हैं।

हमारे एक पत्रकार दोस्त जब कभी मस्ती में आते हैं तो कहा करते हैं—"राहवालों, बाअदब, कि हम आ रहे हैं।" ये 'हम' शब्द पत्रकारों के पेशे से घना संबंध रखता है। हर बार सताये जाने पर पत्रकार 'हम हम' चिल्ला उठता है। इसका कारण यही है कि आज का पत्रकार शोषितों का वकील है। हर सताया हुआ प्राणी पत्रकार से अपना दुखड़ा रोता है, और पत्रकार उसके

दुख को संसार में प्रकाशित कर समाज से न्याय मांगता है। यही पत्रकार जब खुद अपने को ही सताया हुआ महसूस करता है तो वह निरुपाय हो जाता है। जब अपने दुख को प्रकाश में लाने का समय आता है तो उसका पत्र मालिक की मिल्कियत हो जाता है। इसीलिए मजबूर होकर बेचारा 'हम हम' चिल्लाता है: "हम ये हैं, हम वह हैं, हम तोप हैं, बन्दूक हैं···और आज हमारा मूड ठीक नहीं। लाओ काफी, चाय लाओ, या नशा, भांग लाओ। हम नशे को अपना दुख समर्पित करेंगे और सो जाएंगे। कल सवेरे फिर सब कुछ भूल कर उसी मालिक के अखबार में काम करेंगे, क्योंकि वह काम हमें करना है। हमारे बाल-बच्चे हैं, पेट हैं। यही हमारी मजबूरी है, वरना हम पत्रकार शाहों, सम्राटों, राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों के समान ही समाज से उच्चासन का अधिकार मांगते।"

ये पेट और बाल-बच्चों की मजबूरी वाकई बड़ी ठोस मजबूरी है। मगर आप चट से सवाल कर बैठेंगे कि अगर पेट न होता तो क्या होता? और इस तरह के सवालों-जवाबों का कहीं अन्त ही नही। लिहाजा हम इसी बात पर गौर करेंगे कि अगर पत्रकार न होते तो क्या होता? विदेशों को तो हम नहीं कहना चाहते, क्योंकि वहां की दशा का हमें आंखों देखा अनुभव नही, मगर अपने देश के पत्रकारों और खासकर के हिन्दी के पत्रकारों को देखकर तो हम यह कह सकते हैं कि अगर पत्रकार न होते तो दुनिया में बौद्धिक गुलामी न होती। हमारी इस बात को गलत मानें तो किसी देशी अखबार के दफ्तर में जाकर देख लीजिए। दफ्तर के कमरे में मेजों पर झुके हुए ये पत्रकार दनादन अंग्रेजी से अनुवाद करते चले जाते हैं। सरकारी प्रचार विभाग की सूचनाओं को जमा करते जाते हैं, जिले के संवाद-दाताओं की खबरों में काट-छांट करते जाते हैं, दूसरे अखबारों से कतरने काट-काटकर अपने मैटर में चस्पा करते चले जाते हैं। मशीन की तरह उनकी रोज मर्राहयों ही चलती है, हुक्म के हैंडिल से पुरजों की तरह चलते जाते है। हां, आदत के तौर पर वह ये जानते हैं कि कौन खबर कितनी महत्त्वपूर्ण है, और उसे किस तरह छोटे-बड़े हैडिंगों से सजाकर पेश किया जाए। बुद्धि और सूझ का पेशा होने पर उन्हें अपनी बुद्धि और सूझ का इस्तेमाल करने की इजाज़त नही। उन्हें गत का पुस्तकालय नही मिलता, उन्हें घटनाओं की खोज में बाहर जाकर अपनी शक्ति की परीक्षा लेने का अवसर नहीं मिलता, प्रोत्साहन नही मिलता, खर्चा नहीं मिलता। उन्हें असलियत कुछ भी नहीं मिलती...फ़क़त 'सब-एडिटरी' की कुर्सी मिलती है...खटमलों से मढ़ी हुई, डांट-फटकार और जलालत से जड़ी हुई। बुद्धि छीनकर उनसे यह कहा जाता है कि तुम बेवकूफ हो, पर काटकर कहते हैं कि तुम्हें उड़ना नहीं आता इसलिए तरक्की के हकदार नही। सोचिए भला कि अगर पत्रकार न होते तो मालिकों को इस तरह सांप मार कर लाठी बचा लेने का करतब दिखाने का मौका कैसे मिलता?

इन सब-एडिटरों के ऊपर या कहना चाहिए कि अखबार के दफ्तर में सबसे ऊपर संपादक नाम का एक प्राणी होता है। इस प्राणी को कुर्सी पर बैठाने से पहले अखबार चलाने वाली पार्टी के कर्ता धर्ता या सेठ चारों ओर से ठोक-पीटकर देख लेते हैं कि वह उनके मन-मुताबिक डुगडुगी पर नाच सकता है या नहीं। सम्पादक का मालिकों के इशारे पर नाचना निहायत जरूरी है, क्योंकि उसी को तो नचाकर मालिक मदारी की तरह जनता से पैसे वसूल करते हैं। सम्पादक के पास बुद्धि का होना निहायत जरूरी है, मगर यह बुद्धि कोई ऐरी-गैरी न होकर व्यावहारिक होनी चाहिए। व्यावहारिक बुद्धि के माने यह हैं कि सत्य अगर मालिकों के हक में है तो उसे हर भाषा और देश के दर्शन, सिद्धान्त और साहित्य के ऊंचे से ऊंचे तर्कों से सजाकर संसार का सर्वोच्च सत्य सिद्ध करने की अक्ल उसमें होनी चाहिए। और मान लीजिए कि सत्य यदि मालिकों का काम बिगाड़ता है तो सम्पादक की यह ड्यूटी है कि उस सत्य की दुम-सीग काटकर उसका मजाक उडाने में वह अपनी पैनी से पैनी बुद्धि का उपयोग करे। इसके अलावा सम्पादकों को अक्सर औकात खुशामद की कला मे भी दक्ष होना पडता है।

सोचिए भला कि अगर सम्पादक नाम का पत्रकार न होता तो क्या होता ? फिर तनख्वाह रूपी मेनका किस विश्वामित्र को कुत्ता बनाकर स्वर्ग की सभा में ले जाती ?

मगर तस्वीर का यही एक पहलू नही। हमारे देश मे भी ऐसे पत्रकार हुए हैं जिन्होंने कम्पोजिंग से लेकर अखबार बेचने तक का काम खुद ही किया। एक पेज का अखबार निकालकर बड़ी-बडी विरोधी शक्तियों का सामना करके भी सत्य और न्याय के सिद्धान्तों का प्रचार किया है, पेट पर पट्टी बांधकर भूखी जनता के लिए लड़ाई लड़ी है। ऐसे पत्रकारो को देखकर वाकई यह सोचना पड़ता है कि अगर ये न होते तो क्या होता ?

यहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो

वसन्त और फाग के मस्त मौसम में खबर आई है कि स्वर्गपुरी का लालफीता अब संन्यासी होने जा रहा है। पृथ्वी पर ऐसा कौन है जिसे लाल फीते का वैभव विदित नहीं—लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल।

लालमलाल स्वर्गपुरी की माया-महिमा का कौन बखान करे! जनेश, गणेश, सुरेश सब यहीं रहते हैं, फिर भी यहां की माया का आदि-मध्य-अन्त उनकी ही समझ में नहीं आ सका। इस स्वर्ग में चार नगर हैं—शाननगर, माननगर, विनय नगर और सेवानगर। शाननगर में उन आई० सी० एस० महाप्रभुओं का निवास है जिन्हें, औरों की तो बात ही जाने दीजिए, नए आई० ए० एस० छोकरे तक 'डैम' भारतीय नजर आते हैं। माननगर में 'डिप्टी', 'अण्डर' आदि किस्मों के वे मानी उपप्रभु रहते हैं, जिनके आगे सैकड़ों फर्शी सलामें झुकती हैं और लाल-फीते की नकेल डालकर शाननगरी महाप्रभु जिनका नित्य मान-मर्दन किया करते हैं। विनयनगर लालफीते का बोझ ढोने वाले जन्तुविशेषों का नगर है। माननगरी धोबिनें अपनी शाननगरी धोबिनों से बस न चलने पर इन्हीं के कान उमेठती हैं और यह विनयशील वर्ग किसी और पर बस न चलने के कारण आपस में ही दुलत्तियां झाड़ लिया करता है।

इस शान-मान-विनय और सेवा-धर्मधारी लाल फीते को वसन्त में बैराग लेने की सूझी है। यह समाचार हमारे कलेजे में होली दहका रहा है। कायाकल्प की हुई भरी जवानी में इस 'गेलार्ड' लाल फीते बेचारे पर ऐसी क्या गुजरी कि वसन्त में वेदान्ती बनकर उसे नशेबन्दी का आयोजन करना पड़ रहा है।

हम इस समय स्वर्गलोक की हाहाकारमयी स्थिति की कल्पना कर रहे हैं। सोचा, 'गेलार्ड', 'एम्बेसेडर', 'इम्पीरियल'—जैसे बड़े शान-मान वाले होटलों में ताले पड़ गए होंगे, हर बंगले-कोठी के कम्पाउण्ड में लान पर पर्णकुटियां खड़ी हो गई होंगी। अब न लंच और एटहोम के जश्न होंगे और न काकटेल पार्टियों की रौनक। अब शान-मान नगरों की वे गुट-गोष्ठियां भी न रही होंगी जहां विनयनगर निवासी खुशामदाचार्य, ड्राफ्ट-शास्त्री, फाइल-पंडित-गण परनिंदा-पुराण बांचकर नौकरशाही धर्म का प्रसार करते थे। बेचारे सेवानगर वाले अपने अफसरों के

वेदान्ती हो जाने पर सेवा-धर्महीन हो बख्शीश के टोटे पर हाहाकार कर रहे होंगे।

फिर सोचा कि स्वर्गलोक को वेदान्त-संकट-ग्रस्त समझकर विलाप करना कोरी भावुकता यानी मूर्खता है। स्वर्ग में लाल फीते के प्रभाव से सब काम सिल-सिलेवार होता है। इसलिए वेदान्त भी सिलसिलेवार ही चलेगा। फिर क्या कष्ट है? इस वसन्त में किसी ज्ञानी महाप्रभु को 'निजी' या 'निजी और गोपनीय' अनुभव के कारण वेदान्त दृष्टिगोचर हुआ होगा, इसलिए फाइलों पर नोट चढ़ा अगले वसन्त तक फाइलें दौड़ती रहेंगी। एक लिखेगा—'वेदान्त का विचार तो ठीक है पर यह बजट कितना खाएगा?'

दूसरा लिखेगा—'बजट-तिलस्म की सातवीं कल के सातवें पेंच का छेद इतना बारीक है कि वेदान्त की ग्रीज लगाने से बिल्कुल बंद हो जाता है और पेंच नहीं बैठता। इस पेंच की रक्षा करना बहुत जरूरी है। अतएव मेरा विचार है कि वेदान्त का प्रसार तो अवश्य किया जाए मगर सातवीं कल के सातवें पेंच अथवा लालफीताई तिलस्म के ऐसे तमाम बारीक पेंचों को उसके प्रभाव से रोका जाए।'

तीसरा अफसर, जो पहले अफसर का मित्र भी हो सकता है, लिखेगा—'वेदान्त बड़े लाभ की वस्तु है, इससे ज्ञान के रोमकूप तक खुल जाते हैं, फिर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे विद्वान 'एक्स, वाई, जैड', को सातवीं कल के सातवें पेंच के छिद्र-भरण की चिन्ता क्यों सता रही है?'

फिर फाइलें घूमेंगी, और नोट चढ़ेंगे, फिर कोई सख्त नोट लिखेगा—'बड़े खेद की बात है कि वेदान्त-शिक्षा आरम्भ हो जाने के बाद भी एक्स०वाई० जैड०, टी० टी० एन०, एल० एल० टी०, टी० टी० टी०, पी० पी० पी०[1]—आदि व्यर्थ के नोट्स लिखकर लालफीते की तीव्र वेदान्ती गति में बाधा डाल रहे हैं। इन विद्वान् अफसरों को यह समझ लेना चाहिए कि उनके मन जब तक रजोगुण, तमोगुण या सतोगुण के वश में रहेंगे तब तक निरंकुश होने के कारण वे धर्म या अधर्म के कर्म किया करेंगे, धर्म कम अधर्म अधिक करते रहेंगे। विद्वान् अफसरों का मन देहाभिमान के साथ माया के गुणों में लिप्त है, इसीलिए एल०एल०टी०, टी०टी०टी०, पी०पी०पी० के मिथ्या अहंकार ने फाइल को महीनों अपनी-अपनी मेजों पर रोक रखा। मैं चाहता हूं कि ये तीनों अफसर आठ दिन सोलहों दण्ड की एकादशी करें और रोज सवेरे चार बजे जमनाजी के कछुओं को राम-नाम की गोलियां खिलाएं।

इसके बाद भी फाइलें रुकेंगी नहीं। लाल पिया का ऊंचा-नीचा पंथ चढ़ती-उतरती हुई अनेक कमेटियों का निर्माण करेंगी। कमेटियां रिपोर्ट करेंगी। रिपोर्टों

1 शब्दों का संक्षेपीकरण

पर फिर फाइलें दौड़ेंगी। तब तक अनेक वसन्त बीत जाएंगे, किसी को वसन्त की खबर भी न लगेगी। इतना सब हो जाने के बाद फिर कभी यदि आप स्वर्गलोक की सैर करने जाएंगे तो 'गेलार्ड' में मृगचर्म के टेबुल-क्लाथों के ऊपर गैरिक वस्त्र-धारी बैरागण आपको चाय से लेकर स्काच सोमरस तक अर्पित करते हुए मिलेंगे। सड़कों पर माया-अविद्या का नाश करने के लिए जगह-जगह साइनबोर्ड नज़र आएंगे—'हमारी वेदान्त योजना को सफल कीजिए', या 'यह संसार मसान की तरह अमंगल का घर है, इसे त्यागिए', अथवा 'स्त्री-बच्चे आदि परिवार के लोग इस संसार-रूपी जंगल के सियार और भेड़िये हैं।' कहीं पर लिखा होगा—'स्त्रियां इस भवाटवी में घोर आंधी के समान हैं, इनसे बचिए।'

स्वाभाविक है कि वेदान्त-शिक्षा का इतना प्रसार हो जाने के बाद महा और उपप्रभुओं के घर तो उजड़ ही जाएंगे। वे अपने घर में रहने वाले सियार और भेड़ियों को दूर हुंकालने की सोचेंगे, इसके लिए फिर फाइलें दौड़ेंगी, अजायबघर बनेगा जिसमें वेदान्तियों के बच्चे और बीवियो को रखने का आयोजन होगा। पापा की मोटरों पर दौड़ने वाले बच्चे कोठी मोटर से दूर होते समय बिलखेंगे। पिया की मोटी तनख्वाह पर चैन करने वाली महिलाएं अपना इस प्रकार त्याग होते देखकर सभाएं करेंगी, जुलूस निकालेंगी, नारे लगाएंगी, हो सकेगा तो सड़कों पर लगे हुए वेदान्ती प्रचार के साइनबोर्ड भी तोड डालेंगी।

ऐसी हलचल में ज्ञानी-मानी वेदान्तियो पर भवाटवी का संकट घर सकता है। हमें भारी भय है कि उस समय उनका वेदान्त कहीं स्खलित न हो जाए, और ऐसे अवसर पर यदि होली आ गई तो मुसीबत ही आ जाएगी। कामिनियो की कटाक्ष-पिचकारियां मनोज रंग मार-मारकर अपने प्रियतमो से गलबहियां डालकर कहेंगी—'सैया, यहि पाखै पतिव्रत ताखै धरौ।'

हमें वेदान्त के पराभव के लिए उस क्षण का ही भय है। स्वर्गवासी महाप्रभु उस क्षण से बचने के लिए भी यदि अभी से ही फाइलें दौड़ाएं तो सम्भव है कुछ उपाय हो सके। हमारी दूसरी सलाह यह भी है कि होली के अवसर पर यदि वेदान्त को प्रतिवर्ष पन्द्रह दिन की छुट्टी दे दी जाया करे तो वेदान्त के दीर्घायु होने की अधिक सम्भावना है।

(1955)

जय बम्भोला

शिवरात्रि के मेले की मौज-बहार लेने के लिए झोला कन्धे पर और सोटा हाथ में लिए हम भी मगन-मस्त चाल से दिग्गज के समान झूमते-झामते महादेवा के पावन क्षेत्र की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। ये देखो, दसों दिशाओं से घेरकर महादेव की दर्शनार्थी, ग्रामीण जनता बम-बम भोला महादेव की जै जै कारें करती चली आ रही है। लाखों भगत चले आ रहे हैं; गंगाजल की कांवरों पर कांवरें कन्धों पर लादे चले आ रहे हैं। हर एक को बस एक ही लगन लगी है। भोला-नाथ, तुम्हारे दर्शन कर लें, तुम्हें जल चढ़ा दें, और तुम्हारे सामने गाल बजाकर उलु-उलु-हरहर बमबम के नारों से आकाश गुंजाकर अपना जीवन सार्थक कर लें। क्यों नहीं भगवान्, आखिर तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश की हाई कमाण्ड में से एक हो, लय-प्रलय के देवता हो, और वरदानी हो। ऐसे भोले कि भगत की एक सच्ची-झूठी मनुहार पर रीझकर मनमाने वरदान दे देते हो। रावण, बाणासुर, भस्मासुर आदि सभी दुष्ट जन तुम्हीं को अपनी तपस्या से फुसलाकर बड़े-बड़े वरदान पा गए और बाद में स्वयं तुम्हें ही कष्ट देने लगे। तब क्यों न लोगबाग तुम्हारी सच्ची-झूठी खुशामद में लगें। लेकिन हे देवाधिदेव, भारत की अनपढ़ गरीब भोली जनता बड़े भाव से तुम्हारी स्तुति करती है, बड़ी अनोखी महिमा बखानती है "बम बम भोले नाथ कि जिनके कौड़ी नहीं खजाने में। तीन लोक बस्ती में बसाए आय बसे वीराने में।"

वाह, बिना कौड़ी के महिमामय भगवान तुम्हारी ऐसी निराली स्तुति भारत की जनता ही कर सकती है। वो देखो वो—मंझोले कद का वह भस्म-जटा-दाढ़ी चिमटाधारी साधु किस ठाठ के साथ अपनी कड़कदार आवाज़ में सुना रहा है :

डमरू डिमिकि डिमिकि डिम बोला।
नाचें अगड़धत्त बम्भोला
पहिदे आसमान का चोला
माथे गंग नाग तन डोला
छानें सौ मन भंग का गोला॥ नाचें अगड़धत्त॥

कमाल है विश्वनाथ, तुम्हारे भक्तजन तुम्हें सौ-सौ मन भंग के गोलं छना देते हैं, आक-धतूरे का भोग लगाते हैं—यही नहीं, एक कवि ने तुम्हारी भंग-ठण्डाई का जो नुस्खा लिखा है उसे तो पढ़ने मात्र से ही जब हमें घनघोर नशा आ जाता है तब तुम्हारा क्या हाल होता होगा, ये तुम्हीं जानो। कवि जी ने तुम्हारे श्रीमुख से भगवती पार्वती जी को क्या कहलाया है, सुनोगे प्रभु?—सुनो :

एक समय अति मगन मन बोले बिहंसि महेस।
मैं जइहीं प्रिय गोकुले सुनहु उमा उपदेश॥
घर बन में विजया नहीं मिलै न हाट बाजार।
मोहि भांग बिन भामिनी कौन करेगा प्यार॥

कवित्त

जैहौं ग्राम गोकुले गोविन्द पद बन्दन को
मोहिं जलपान को सामान करवाय दे
सुकवि शिवराम सौंफ कासनी पछोरि फोरि
घोरिकै अफीम तीन तामें मिलाय दे।
काली मिर्च कालकूट सिंधिया धतूर तोरि
संखिया सुफैद रंग डैल से डराय दे।
लाय दे करोर बोर केसर सो सराबोरि
एती थोरी भांग मेरी झोरी भराय दे।

देख रहे हो भोलानाथ, एक भगत ने तो सौ मन भंग का गोला छनाकर ही सन्तोष कर लिया था पर दूसरे को तो करोड बोरे भग भी थोडी ही मालूम पड रही है, जिसमें संखिया, धतूरा, कालकूट और अफीम भी मिलाई गई है ऐसी गहरी पंचरत्नी को भी मात्र तुम्हारे जलपान का ही साधन बतलाया गया है। हद हो गई योगेश्वर, हद हो गई—भला एक बात तो बताओ, इतनी भांग पीकर तुम्हें हाई या लो ब्लडप्रेशर तो नही होता? अजब हाल कर रखा है तुम्हारे भक्तों ने, एक ओर तो तुम्हें इतनी नशे की गर्मी देते हैं और दूसरी ओर लोटों पर लोटे और कलसों पर कलसे गगाजल चढ़ाते हैं। इस मार्च के महीने यदि और किसी को इतना नहलाया जाए तो उसे डबल निमोनिया ही हो जाए। मगर आप तो भूतनाथ हैं, सर्दी-गर्मी सब एक समान ही अपने अन्दर लय कर लेते हैं। आपके इसी विकट महादेवपन के कारण ही तो बड़े-बड़े कवियों ने आपके साथ बड़े-बड़े मजाक किए हैं। अरे संत शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास जी तक आप की ब्याह-बरात का रंगीला वर्णन करने से नही चूके। राष्ट्रीय आन्दोलन के जमाने में भी आपके भक्तों ने आपकी नशेबाजी की आदत का खूब मजाक

उड़ाया है। उस जमाने का किसी कवि का बनाया एक कवित्त मुझे याद आ गया—सुनिएगा भगवन्, सुनिए :

गांधी की न आज्ञा गांजा भांग आदि पीने की
भूतनाथ आप अब भंग न पिया करें
छोड़ें पुरानी अपनी अड़बंगी चाल
जोरू साथ बैठे न चकल्लस किया करें
छिड़ा है भारत में स्वतन्त्रता का घोर युद्ध
भारतीय नाते भाग इसमे लिया करें
आप बने लीडर गनेश वालटियर बनें
कह दें उमा से जाके पिकेटिंग किया करें ।।

यह सब हंसी-मज़ाक सिद्ध करता है कि जनता आपको बेहद चाहती है। आपकी श्रद्धा से सराबोर होकर कोसों और मीलों से चली आ रही है—बम बम भोले। बम्भोले। हर हर महादेव।

लेकिन भोलेनाथ ! एक बात सच्ची बताना। क्या तुम अपने इन बड़े-बड़े मन्दिरों में सचमुच विराजमान हो ? यहां तो तुम्हारे नाम पर तुम्हारे पण्डे-पुजारी तुम्हारे भक्तों को लूट रहे हैं। ये देखो, तुम्हारे मंदिर के अन्दर क्या मारा-मारी मची हुई है। तुम्हारे पुजारी लोग तुम्हारे अपढ भोले भक्तों के हाथों से झपाझप प्रसाद और पूजा-सामग्री छीन-छीनकर कोने में धरते जा रहे हैं। इन पुजारियों के चेहरों पर भक्ति-भावना की एक धुधली-सी छाया भी नहीं पड़ी है। सूरत से ही ये लोग डाकू लग रहे हैं, डाकू। तुम्हारे इस मन्दिर में चांदी के किवाड़ हैं, संगमरमर का फर्श है, चांदी का विशाल सर्प और सोने का छत्र है, बांस-बल्लियों की आड़ लगी होने पर भी भक्तों की भीड़ तुम्हारे दर्शनों के लिए टूटी पड़ रही है—पर तुम यहां कहां हो भगवान।···कहीं दिखाई नहीं पड रहे हो, फूल, बेल-पत्र और धतूरे के फलों का एक पहाड़ तो अवश्य दिखलाई देता है—तो क्या इसीके नीचे तुम दबे हुए हो ? तुम अपने भक्तों की अंध श्रद्धा से दबे हुए हो देवता ? नहीं, तुम यहां हरगिज़-हरगिज़ नहीं हो सकते। शिव ! तुमने तो सदा इन लुटेरे पण्डे-पुजारियों के कर्मकांड का विरोध कर भक्तिरस की अमृत धारा प्रवाहित की है। अपनी मोटी दक्षिणा की लालच से जब इन पोपपंथी कठ-मुल्लों ने राजा-प्रजा का कीमती धन और समय यज्ञ पर यज्ञ कराके स्वाहा करना शुरू किया, राष्ट्र को अंधा और अपगु बना डाला तब तुमने भक्ति की महिमा बढाई। तुमने उपदेश दिया कि जो व्यक्ति अपने घर से चलकर नित्य जितनी दूर गंगा स्नान करने जाता है, जितने कदम चलता है, वह एक-एक कदम पर सौ-सौ बाजपेय यज्ञों का पुण्यफल पाता है। वाह रे त्रिलोचन भगवान, तुमने हजारों

लाखों रुपयों का घी-यव-धान्य आग में जलाकर दक्षिणा से मोटे बननेवालों के धर्म को निकम्मा सिद्ध कर दिया।

दक्षिण भारत के मीनाक्षी मंदिर की दीवार पर तुम्हारी 'पुट्टू लीला' के चित्र भी मैंने देखे हैं—कैसी सुन्दर कथा है! एक बुढ़िया थी, बिचारी के कोई नहीं था, बड़ी गरीब थी, रोज़ चावल के पुट्टू बनाकर बेचती और तुम्हारा भोग लगाती थी। एक बार तमिलनाडु में अकाल पड़ा, बारह बरस तक पानी न बरसा तो राजा ने हुक्म लगाया कि प्रजा के सब लोग मिलकर तालाब खोदें। धनी लोग मजूरों को पैसे दे-देकर अपनी सेंती काम कराने लगे पर बिचारी बुढ़िया कहां से पैसे पाए, और उसके शरीर में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि फावड़ा चला सके। बेचारी बुढ़िया बड़ी दुखी थी। तुम्हारी पूजा करके वह कहने लगी कि हे महादेव बाबा, मेरे तो कोई बेटा नहीं, मेरी सेंती कौन काम करेगा। उसका ये कहना था कि तुम झटपट एक जवान मजूर का भेस धरकर वहां आ पहुंचे और कहा कि मां मैं तुम्हारा बेटा हूं। ये प्रसाद के पुट्टू तुम मुझे खिला दो तो मैं तुम्हारे बदले तालाब खोद आऊंगा। बुढ़िया बोली कि ये पुट्टू तो शिवजी को भोग लगाऊंगी। तुम्हें नहीं दे सकती। पर तुम भी ठहरे एक नटखट, तुमने कहा कि नहीं मैया, मैं तो यही पुट्टू खाऊंगा तब तालाब खोदने जाऊंगा। बुढ़िया बोली : "मैं चाहे आप फावड़ा चला लूंगी पर ये शिवजी का भोग है सो उन्हें ही चढ़ाऊंगी।" फिर जैसे ही वह तुम्हारी मूर्ति पर पुट्टू चढ़ाने लगी वैसे ही वह पुट्टू उड़कर मजूर के मुंह में चला गया और मजूर यानी कि तुम हंसने लगे। बुढ़िया चकित हो गई। तुम्हें पहचान कर वह जैसे ही तुम्हारे चरणों में गिरने लगी कि तुमने कहा : "नहीं, तुम तो मेरी मां हो।" और एक ही दिन में तुमने तालाब खोदकर पानी निकाल दिया। तुम गरीबों के भगवान हो, असहायों के सहायक हो, दीनबंधु दीनानाथ हो। अपने भक्तों की तीखी बातें सुनकर भी तुम उन्हें निहाल कर देते हो।

यहां मुझे आंध्र के कवि श्रीनाथ की कथा याद आ रही है। बेचारे एक जंगल से चले जा रहे थे, प्यास के मारे गला चिटक रहा था, न तालाब न बावड़ी, न नदी न नाला—बेचारे बड़े ही दुखी थे। चलते-चलते उन्हें दूर पर एक कुआं दिखाई दिया। दौड़ते-हांफते वहां पहुंचे कि अब पानी पीने को मिलेगा, पर वहां पहुंचकर देखा तो कुआं अंधा था। श्रीनाथ बेचारे बड़े दु:खी हो गए। प्यास के मारे झुंझलाकर उन्होंने अपने इष्टदेव से, यानी तुमसे, कहा कि हे शंकर जी, तुम एक बीवी गंगाजी को अपने सिर पर चढ़ाकर और दूसरी पार्वतीजी को बामांग में बिठाकर भंग के नशे में बैठे-बैठे चकल्लस कर रहे हो और यहां तुम्हारे एक भक्त की प्यास के मारे जान निकली जा रही है। तुमको लज्जा नहीं आती? भक्त की फटकार सुनकर तुमने तुरन्त ही गंगा जी को उस अन्धे कुएं में उतार दिया और प्यासे कवि श्रीनाथ जी की जान बचाई। यानी कथा का अर्थ ये है कि

जहां सच्चा भाव होता है वहां कर्म भी होता है और जहां भाव है, कर्म है, वहां ज्ञानगंगा भी आप ही आप प्रवाहित होने लगती है।

हे त्रिनेत्र, तुम ज्ञान देते हो, भक्ति देते हो, शक्ति देते हो। तुम्हारा यही रूप मंगलकारी है, मैं तुम्हारे इसी रूप को भजता हूं। जय भोले। भोले बम्भोले।

भोलेनाथ, क्या मरज़ी है तुम्हारी? होली के दिन नगिचियाए हैं। आजकल तो डबल गहरी छनती होगी मेरे गुरू, गुरुओं के गुरू। मगर एक बात कहूं? कहोगे कि गुरु से छेड़खानी करता है, भारतीय संस्कृति के खिलाफ काम करता है। नहीं-नहीं, विश्वंभर, सो बात नहीं। अपने यहां के भक्ति दर्शन की यही तो महिमा है—

पितु मातु सहायक स्वामि सखा
तुम ही इक नाथ हमारे हो—

—सो तुम गुरु भी हो, यार भी हो। इस बखत हमारा तुमसे यारी बरतने का मूड है, सो यारी बरतेंगे और इस बहाने तुम्हें तुम्हारे हित में कुछ खरी-खरी सुनावेंगे। हम पूछते हैं भोले, महंगाई कितनी बढ़ गई है कुछ इसकी भी खबर रखते हो कि सदा अलमस्त ही बने रहते हो।भगवती से पूछो भला कि तुम समान अलमस्त का खर्चा कैसे चलाती होंगी। ये तो कहो कि कार्तिकेय और गणेश अपने-अपने काम-धन्धे से लगे हैं। नहीं तो गुरू, ये तुम्हारा सारा नाच-हुड़दंग कब का खत्म हो जाता। हम पूछते हैं गुरूजी, इतना बढ़िया नाचते हो कि 'नटराज', 'आदि नट' कहलाते हो, एक बढ़िया-सी कम्पनी खोल के दुनिया-भर में अपना डांस ट्रूप क्यों नहीं घुमाते? तुम्हारी नकलें उतार-उतार कर नर्तक लोग लखपती बन गए और तुम भिखारी के भिखारी ही रहे। भोलेनाथ, तनिक कल्पना तो करो कि ठाठ से सूट-बूट पहने हो, नेकटाई की जगह गले में सर्प डोल रहा है, हाथ में सिगरेट का टिन है, चेहरे पर लापरवाही और खोएपन की अदा है, कपाल पर तीसरा नेत्र और सिर के जटाजूट में गंगा जी मानिन्द फव्वारे के मद्धिम-मद्धिम पिक्टोरियल एफेक्ट मार रही हैं। भूतनाथ, इस छवि को देखते ही सारी दुनिया तुम्हारे पीछे भूत बनी डोलेगी। जहां जाओगे फोटोग्राफरों का हुजूम पीछे जाएगा। आटोग्राफ देते-देते तुम्हारा हाथ मशीन हो जाएगा। बड़े-बड़े राजमहलों में दावतें उड़ाना, मज़े से भारतीय संस्कृति पर लेक्चर देना और फिर ठाठ से एक महल बनवाकर रहना, बैल छोड़ मोटर, हवाई जहाज़ पर सवारी करना। चेला होने के नाते मैं भी तुम्हारी कम्पनी का मैनेजर हो जाऊंगा। मेरे भी ठाठ हो जाएंगे।

क्या कहा? आइडिया पसन्द नहीं आया। कहते हो यों ही गुज़री है, यों ही

गुजरेगी। हां, एक तरह से तो ठीक ही कहते हो नटराज! जब तुम्हारे भक्त तक इतने अल्पसन्तोषी हैं कि पुकार-पुकारकर कहते हैं :

चना चबेना गंगजल जो पुरवै करतार।
काशी कबहूं न छोड़िए विश्वनाथ दरबार।।

जब भक्त ही कहीं नहीं जाना चाहते तो तुम अपने भक्तों को छोड़कर भला कहा जाओगे ?

मगर भोले, आज के समय में ये अल्पसन्तोष की फिलासफी ठीक नहीं।

किम दातेन धनेन वाजि करिभि:
प्राप्तेन राज्येन किम।
किंवा पुत्र कलत्र मित्र पशुभिर्देहेन गेहेन किम
ज्ञात्वेतत्क्षणभंगुर सपदिरे त्याज्यम् मनोदूरत:
स्वात्मार्थम गुरु वाक्यसो भज-भज श्री पार्वती बल्लभम्।।

अच्छा गुरू नाथ, हमारी एक शका का समाधान करो। ये तो तुम जानते ही हो कि आज हम साफ-साफ कहने-सुनने के मूड में ही बैठे हैं।—हम पूछते हैं भोले —यह मान लिया कि यह शरीर क्षणभंगुर है—माटी मे से आया बन्दे माटी में मिल जाना है—बिलकुल ठीक है। फिर ये माया-मोह कि राजसुख पा लू और मान सम्मान पा लू, दिग्विजय कर लू, मामले-मुकदमे लड़ लूं, ये मेरा है, ये तेरा है—ये सब व्यर्थ है—आदमी को नित्य ब्राह्म मुहूर्त में उठकर माला हाथ में लेकर ओम् नमो शिवाय ही जपते रहना चाहिए। वाह, क्या बात है, अगर ऐसा ही जीवन होता तो फिर कहना ही क्या था। मगर उसमें दो भारी अड़चनें हैं—एक तो पेट और दूसरे विवाह की समस्या। तुम कहोगे, क्या भौतिक बातें करता हू, अध्यात्म में क्यों नहीं मन रमता। पर तुम्हारे भगत लोग कह गए हैं गुरू कि:

भूखे भजन न होंहि गुपाला, यहि लेओ कण्ठी यहि लेओ माला।।

यह पेट का कुत्ता नहीं मानता। इसको भरने के लिए माला को खूटी पर टांगना ही पड़ेगा। अच्छा टांग दी, अब क्या करें ? चोरी करें, झूठे धर्म और तुम्हारी झूठी महिमा को बखान-बखानकर भोली-भाली श्रद्धामयी जनता को ठगें या मेहनत-मजूरी करें, सच्चा काम करें।

क्या कहा ? काम करना चाहिए। सच्ची मेहनत की रोटी खानी चाहिए। ठीक है, तो अपने कथावाचकों और पोप गुरुओं की बेतुकी जबानों पर ताला लगा दो प्रभु, जो दिन-रात इस मूलभूत पेट से संचालित दुनिया को मिथ्या बताते हैं। तुम्हारे भक्त थे कलाकार, शिल्पी, इंजीनियर और मजदूर, जिन्होंने एलोरा में

ऊंचे पहाड़ को मोम की तरह काट-खोदकर तुम्हारा अद्भुत कैलाश गुफा मन्दिर बनाया है। भोलेनाथ, तुम्हारे हिमाच्छादित श्वेत कैलाश पर्वत की शोभा अनन्त है, दिव्य है, यह माना, पर तुम्हारे भक्तों का—मनुष्यों का बनाया हुआ एलोरा का कैलाश मन्दिर भी अपूर्व है, इंच-भर का पत्थर का टुकड़ा भी बाहर से लाकर नहीं जोड़ा — एक ही पहाड़ में से अर्ध चन्द्राकार में दो मंज़िल इमारत बनाई, उसमें मण्डप बनाए, आले, खंभे, और उनमें मूर्तियां उकेरीं, बीचों-बीच मुख्य मंदिर बनाया—कमाल किया है। हमारे पुरखे, तुम्हारे भगत, ऐसे बहुगे छनन्ता थे कि पहाड़ को ही नशीली लहर भरी परम स्वादिष्ट ठंडाई बनाकर पी गए और सदियों के लिए प्रेरणा का नशा छोड़ गए। और उसमें एक चकल्लस भी है। वह अद्भुत मंदिर बनानेवाले अपनी श्रद्धा विनय की छाप भी छोड़ गए हैं।

रा ण को लेकर तुम्हारी वह कथा जो प्रसिद्ध है न कि एक बार रावण को अपनी शक्ति पर इतना गर्व हुआ कि उसने अपने गुरू अर्थात तुम्हारा कैलाश पर्वत उखाडकर अपने हाथों पर उठा लिया। तुम उस समय पार्वती जी के साथ बैठे चौपड़ खेल रहे थे। कैलाश पर्वत हिला तो डरकर पार्वती जी तुमसे लिपट गईं। तुमने ध्यान लगाकर कारण समझ लिया और अपना एक हल्का-सा अंगूठे का भार पर्वत पर डाल दिया। पर्वत फिर अपनी जगह पर बैठ गया। अहंकारी रावण के हाथ दब गए। एलोरा के कैलाश मंदिर में इस कथा की भावमूर्ति दो-तीन जगह बनाई गई है, मानो बनाने वाले तुमसे कहते हैं कि हमने कला की शक्ति दिखलाई है। हमने भी बीसियों नहीं बल्कि हजारों हाथों से नया कैलास उठाया है, पर हे परम गुरू, हम रावण की तरह अहंकार नहीं प्रदर्शित करते। क्या कहूं, गुरू, तुम्हारे एलोरा वाले मंदिर के उदात्त दर्शन ने मुझे मोह लिया है और तुम्हारे पोप कहते हैं कि माया-मोह छोड़ो। तुम्हारी श्रद्धा में कितना दिव्य शिल्प विकसित हुआ है इस देश में, अमरनाथ कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण भारत तक, सोमनाथ, गुजरात से लेकर कटक-उड़ीसा-आसाम तक-नेपाल तक—शिव के रूप में कला की ही महिमा विराजमान है—भोले, पूरा 'इमोशनल इण्टीग्रेशन' अर्थात् भावनात्मक एकता का जाल फैला रखा है तुमने, तुम्हारे नाम पर कितना कर्म हुआ है महादेवा! यह कर्म क्या मिथ्या है? एलोरा, ऐलिफेन्टा, चिदम्बरम्, तंजोर, रामेश्वरम्, खजुराहो आदि मे मनुष्य की कितनी मेहनत, सूझबूझ, सामर्थ्य और ज्ञान-भक्ति-साधना रमी है और सबसे बढ़कर कितना दृढ़ संकल्प है—शिव संकल्प— यह भी तो देखो भोले!

आज हमें उसी शिव-संकल्प की फिर से आवश्यकता है। हमारा वैदिक पुरखा जब अपनी महान संस्कृति को नया ही नया ढाल रहा था तब उसने शिव-संकल्प का महत्त्व समझा था। सबसे अच्छा धर्म है अपने मन को ऊंचा उठाओ, अपने मन को कल्याणकारी इच्छाओं से भरो। ओम् क्रतो स्मर कृतं स्मर, आदि-

आदि। अर्थात् संकल्प को याद करो, फिर कर्म को याद करो। कितना सोचा था कि कितना पाया यह याद करो। वाह-वाह, कैसा अनूठा सत्य हमारे पुरखे दे गए। अब गुरू तुम्हारे पोप कठमुल्ले इसी शिव-संकल्प को यों समझाते हैं कि जजमान कितना दान देने का संकल्प बोला था, कित्ता दिया? कितने ब्राह्मण जिमाने थे ···कितने जिमाए, दक्षिणा कितनी सोची थी, यज्ञ कितने सोचे थे कितने किए? —धत्तेरे की, यानी तुम्हारे भोले भक्तों से जो सोचवाया तो अपने ही मतलब का सोचवाया, यह तो तुम्हारा धर्म नहीं भोले। ये महा झूठा, महानिकम्मा, धर्म है। वेदव्यास महाराज ने धर्म की जो व्याख्या की है, वही सच्ची है:

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजा:।
यत् स्यात् धारणसंयुक्तम् सधर्म इत्युदाहृत:॥

यानी उस महान् धर्म को प्रणाम है जो सब मनुष्यों को धारण करता है। सबको धारण करने वाले जो नियम हैं, वे धर्म हैं। अब बोलो भोले, ये ऊंच-नीच, जात-पांत कहां गई? ये बन्धन तो सबको एक में नहीं बांध पाते? क्यों इसे मानना धर्म है। नहीं, हरगिज नहीं, कदापि नहीं। तब फिर भोले, शिव-संकल्प भी ऐसा ही होना चाहिए जो मानव-मात्र के लिए कल्याणकारी हो, यानी पेट भरने के लिए काम करना है और काम करने के लिए करना है शिव-संकल्प। शिव-संकल्प वही है जो मानव-मात्र के लिए कल्याणकारी हो। यानी अपना पेट इस प्रकार भरो कि दूसरे के पेट पर तुम्हारी लात न पड़े। तुम कहोगे कि मेरे पंडों-पुजारियों की निंदा करके मैं स्वयं ही अपने पेट पर लातें मार रहा हूं। अच्छा गुरू, अगर इनको बख्शूं तो चोर, डाकू, काले बाजारिए आदि सभी गुण्डों को बख्शना पड़ेगा। क्या वह उचित होगा? नहीं। यही स्वार्थी लोग ही तो झूठे धर्म-प्रचारक हैं। अपना पेट भरने के लिए ध्वंसात्मक कार्य करते हैं। वह सब कुछ अवश्य ही मायाजाल है, मिथ्या है, परन्तु पेट तो फिर भी सत्य है। पेट है तो नाना प्रकार के रचनात्मक काम भी हैं। और इधर जब औरत-मर्द दुनिया में हैं तो उनका ब्याह भी होगा, बच्चे भी होंगे—पुत्र, कलत्र, मित्र, देह, गेह सभी कुछ होगा, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है—तो क्या गुरूवाक्य झूठा है—पेट और बच्चे-बच्चों मे ही फंसे रहे? नही, जो गृहस्थ अपना और सबका भला साधकर चलता है और अपने हर काम में तुमको ही भजता है तुम उसकी आत्मा हो, उसकी मति तुम्हारी गिरिजा है, उसके प्राण तुम्हारे सहचर हैं और उसका शरीर ही तुम्हारा घर है। वह जो कुछ कामकाज की बातें बोलता रहता है वे तुम्हारी ही स्तुति हैं। जितना चलता है तुम्हारी प्रदक्षिणा करता है, यानी दिन-रात जो कुछ भी करता है वह तुम्हारी आराधना है। हां भोले, झूठी माला फेरने से सबका मंगल चाहने

वाली मेहनत-मशक्कत भरी आराधना ही सच्ची है। अब तुम कोरी आसमानी कल्पनामात्र नहीं हो योगेश्वर भूतभावन ! तुम साक्षात् इस भौतिक जगत में हो, मनुष्यमात्र, जीवमात्र शिव है ॐ नमो शिवाय। जय भोले। जय बम्भोले।

कहो गुरू, होली कैसी रही ? जगदम्बा ने तुम्हारे श्रीमुख पर होली के हुड़दंग में जूते की लाल-काली पालिशें तो नहीं मली थीं—क्योंकि आजकल मियां-बीवी रंगों से नहीं, बल्कि जूते की पालिशों से होली खेलते हैं। मगर गुरू ये बतलाओ, तुम्हारे भगत भूतों ने तुम्हें तुम्हारी मर्जी के खिलाफ रंगकर फिर मार-पीट तो नहीं की ? आजकल ये सब भी होने लगा है गुरूजी। अभी परसों ही एक नवयुवक सवेरे-सवेरे किसी से मिलने जा रहा था। शायद अपनी चाकरी के सम्बन्ध में ही जा रहा होगा। होली के हुड़दंगिए उसके बगुले के परों-से सफेद कपड़े रंगने के लिए झपटे, बेचारे ने प्रार्थना की— कहा कि अभी न रंगों, एक तो कपड़े नये हैं दूसरे, काम से जा रहे है। लौटने पर जी चाहे तो रंग डाल लेना। मगर हुड़दंगिए कहां मानते हैं। उनका समझ से क्या सरोकार ! बेचारे को रग डाला। इस पर वह युवक नाराज़ हो गया, शायद गाली-वाली भी दी। बस, फिर तो हुडदगियों ने उसे रिक्शे से उतार बुरी तरह पिचकारियों-पिचकारियों ही पीटा। इस पर भी उन्हे सन्तोष न हुआ तो तैश में आकर युवक के पेट में छुरा भी भोक दिया; बेचारे के साथ खून की होली खेल डाली। और ये सब हुड़दंगिए गुरू, तुम्हारे भक्त हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश पूजते है, हर एक को नास्तिक कहते फिरते है - और तिस पर भी ये हाल है उनका। इसीलिए तो हमको तुम्हारी चिन्ता हुई भोलानाथ। क्या मज़े की बात है भगवान कि तुम्हारे पास तो तीन-तीन आंखें हैं और तुम्हारे भक्तो के पास एक कानी आंख भी नही बची। ये शिव-भक्त भारत देश इस समय उचित-अनुचित कुछ भी नहीं देख पा रहा। बस अपने-अपने गुमान में फूले चले जाते हैं हमारे लोग।

आज चारों ओर अहंकार का बड़ा जोर है। जिसे देखो वही शान से ललकार रहा है कि हटो, बचो, हम चौड़े हैं और बाजार संकरा है, इसलिए पहले हमको आगे निकलने दो। हर तरफ शोर है—पहले हम, पहले हम, पहले हम - अच्छा देवेश्वर, लखनवी तकल्लुफ की 'पहले आप, पहले आप' वाला मजाक तो आपने अवश्य सुना होगा। तो बोलिए कि क्या कहूं—पहले हम, कि 'पहले आप' ?—चुप्पी साध गए प्रभु ? जवाब न दिया ? अच्छा, हमारी ओर कनपटी से निहार-कर अब ये मर्म मुस्कान का तीर साध रहे हो भोले ? जान गए कि मैं तुम्हारे साथ ठग विद्या कर रहा हूं।—हः—हः—गुरू, तुमसे पार नही पा सकता, तुम नीर-क्षीर विवेक करके सत्य को परख लेते हो। और हम ?—अब छिपा तो सकते नहीं तुमसे, इसलिए अपने अहंकार को कहलाने के लिए सच ही सच बोले देते

हैं। पर सीधे-सीधे नहीं कहेंगे देव, तुम्हें एक कविता सुनाएंगे, उसके बहाने जो चाहो सो समझ लेना। श्री विश्वनाथ प्रसाद की एक पुरानी कविता है भोलानाथ, मेरी बड़ी पुरानी नोटबुक में लिखी थी। आज वही तुम्हें सुनाए देता हूं। सुनो महादेव :

रसना में महा मधु घोल कहो, तृण से लघु को भी सराहते हैं
रच नाटक भावुकता का कहीं, हम प्रीति की रीति निबाहते हैं
जिसमें कुछ भी न गंभीरता है, उसको गुण से अवगाहते हैं
जग को ठग के अब भोला ! सुनो, तुमको हम ठगना चाहते हैं।

यानी अकडन्चू में जिसको चाहा, मनमाना तंग किया और जब उसने आपत्ति की तो नाराज़ होकर छुरा मार दिया। फिर जब पकड़े गए तो दनादन तुम्हारी खुशामद में लगे कि हे शिव जी, तुम्हें प्रसाद चढ़ाएंगे, कानून के पंजे से हमे मुक्ति दिला दो। हे भगवान, हमें फांसी के फदे से बचा लो। हे भगवान, इस समय मेरे प्राण संकट में है। तुम्हारे घिनौने से घिनौने या तिनके समान तुच्छ किसी भगत-पुजारी के कहो तो सौ बार पैर छू लूगा, जहां कहो नाक रगड़ आऊंगा और जब छूट जाऊगा तो फिर उसी तरह अकड़न्चू दिखाऊंगा—अपन अकड में मैं तुम्हारे ऊपर यह अहसान भी कर दूगा कि तुम्हारा एक नया॰ शिवाला बनवा दूगा ' न अपने पैसे के बल पर नही, पब्लिक चंदे के बल पर ही सही—कहो गुरू, तुम्हें ठग लिया कि नही ? ह: ह ह: ! ये भी मेरे अहंकार का ही एक रूप था—यानी कवि के शब्दों मे- 'रच नाटक भावुकता का कही हम प्रीति की रीति निबाहते हैं।'

ये अपने झूठे मदिर तोड़ डालो भोला। हमारी इस ठग विद्या का अंत कर डालो। ये अहंकार तो ठीक नही।

लेकिन भोले, यही पर हमारी शंका भी निवारण कर दो। सारे धर्मशास्त्र चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि अहंकार बुरा है, बुरा है। पर अहंकार तो सब प्राणियों में है। और अहंकार भलाई-बुराई दोनों की जड़ है। यानी एक तरफ तो इतना बड़ा है कि 'शिवोऽहं' 'शिवोऽहं' की रट लगाई जाती है और दूसरी ओर भी इतना बड़ा है कि हम—बस हमी-हम की गुहार मचाई जाती है। इसमें सच क्या है ?

क्या कहा ? आत्मबोध का वह श्लोक पढ़ने को कहते हो जिसमें तुमने कहा है कि—ब्रह्मादि कीट पर्यन्ता: प्राणिनो मयि कल्पिता: यानी कि मामूली कीट-पतंगों से लेकर ब्रह्मा तक सारे जीवधारी तुम्हारे परम अहम् के अंदर कल्पित हैं लेकिन ये तुम्हारा अहम नहीं है—जैसे समुद्र के ऊपर लहरें और बुदबुदे शान से फूलते इठलाते हैं पर उनसे समुद्र का गंभीर रूप प्रकट नहीं होता इसी तरह

मनुष्य के क्षुद्र अहंभाव में उसके अहम् का गंभीर रूप भी परिलक्षित नहीं होता। उसे देखने के लिए तो समुद्र की गहराई में पैठना पड़ता है।

ठीक है प्रभु—तुम्हारी बात मानता हूं। आजकल करीब-करीब हर जिले में एकाध ऐसे अवतार अवश्य प्रकट हो गए है जो डंके की चोट पर शिवोऽहं, शिवोऽहं कहते है। सौ-पचास चेले-चांटियो की गुण्डा पार्टी तैयार कर ली, भगवा रंग लिया। भग छनने लगी, गांजे सुल्फे के दम लगने लगे और भगतों को उपदेश यह दिया कि ये आजकल की नई विचारधारा के नास्तिक भंगी, चमारो-शूद्रों को सिर पर चढा रहे है। इनको मारो, ये पापी हैं, अधर्मी हैं। अभी-अभी तुमको इष्टदेव के रूप मे पूजनेवाली एक ब्राह्मण जाति का एक जातीय अखबार पढ़ रहा था। उसमे एक ने लिखा है कि छुआछूत, ऊच-नीच, जात-पात को अब नही मानना चाहिए —दूसरे ने इस पर लिखा है कि छुआछूत, जात-पात, ऊच-नीच को मानना चाहिए क्योकि यही धर्म है।

ये जितने जातीय अखबार है, सब अपनी-अपनी जातियो को पुराने तंग दायरो मे बन्द करना चाहते है। नये जमाने का स्वर अब हर छोटी-बडी जाति मे फूट पडा है, उसे दबाते तो नहीं बनता पर दबाने की कोशिशे खूब की जाती है। नमूने देखोगे गुरू! देखो!!

तुम्हारे विश्वनाथ मदिर मे हरिजनो को जब तुम्हारे कठमुल्लो के विरोध के बावजूद दर्शन करने का अधिकार मिल गया तब एक संन्यासी ने तुम्हारे सेठ भक्तो के चदे से एक नया विश्वनाथ मदिर बनाया और कहा कि वो विश्वनाथ तो अब गदी जगह का पत्थर हो गए, इन नये विश्वनाथ को पूजो। ये तुम्हारे 'शिवोऽह मार्का' भक्त है। देखो इनकी लीला, जब इनका गरब-गुमान तुमने खडित कर दिया तो इन्होंने तुमको ही नष्ट करने का प्रयत्न किया। और जब शिवोऽह जपते है तो विश्वभर में जितने 'हम-हम' बोलने वाले प्राणी हैं सभी मे शिव-शिव ही दिखलाई पड़ता है, विश्वनाथ। यदि सचमुच ही विश्वेश्वर हो तो ब्राह्मण-हरिजन दोनो ही काटे तोल एक समान हैं—सभी को शिवोऽहं करने का अधिकार है। जब शिव सबमें हैं तो कैसी ऊंच-नीच, कैसी जात-पांत।

अब जात-पात का मजा भी देखो प्रभु! शायद तुमने अखबारों में पढ़ा भी हो कि हाल के चुनाव में एक ब्राह्मण देवता एक हरिजन उम्मीदवार को अपने किसी स्वार्थवश वोट देने को मजबूर हुए। वोट डालने गए तो गंगाजल साथ लेते गए। हरिजन को वोट डालकर उन्होने अपने ऊपर गंगाजल छिड़का।

ये 'बांभन' का धरम देखा गुरू! इस बभने के ऊपर तुम गंगाजी से कहके मान-हानि का मुकदमा चलवाओ भोले। इसने गंगाजी का बड़ा अपमान किया है।

हे देव, तुम्हारे उल्टे पैरों वाले भूतों मे मुझे तनिक भी डर नहीं लगता, पर

तुम्हारे इन उल्टी मति वाले भूत-पिशाचों से बड़ी घृणा होती है। इनको अबकी कुम्भ में भरके, ऊपर से कपडा बाधकर गंगा जी मे तैरा दो प्रभु। ये संन्यासी पंडित पोंगापंथी महामिथ्या अहकारी सब रावण के वश वाले हैं। ये तमाम जातीय संगठन राक्षसो के सेक्रेटेरियट हैं। इन सबको अपने गाजे-सुल्फे की लपक मे भस्म कर डालो प्रभु। ये पाप के घडे हैं—इनमे घट-घट व्यापी राम नही समाता। ये शिवोऽहं कहने के अधिकारी नही। शिवोऽह—यज बम्भोले।

(1962)

लखनवी होली

इसमे न तो मेरा ही दोष मानिएगा और न यश। कारण यह है कि 'नव-जीवन' सम्पादक ने होली के दिन सवेरे ही अचानक टेलीफोन से मुझे अपने घर पर बुलाकर बडे नाटकीय ढग से डबल गहरी केसरिया भग पिला दी और जब पहला जन्नाटा आया तो बोले कि पडित जी, गुसाईं जी ने आपाद्काल मे चार को परखने के लिए कहा है। आज आपकी मित्रता कसौटी पर है। होली के कारण हमारे रिपोर्टर आज अचानक गायब हो गए हैं। होली के दिन युवको को कोई क्या कह सकता है और अखबार का काम, आप जानते हैं कि रुक नही सकता। इस सकट से आप ही आज हमे उबारिए। मैं सरदार अहमद का ठेला आपको दिलवाए देता हू। ड्राइवर के पास पर्याप्त धन रहेगा, वह बराबर पान-मिष्ठान्न, दूध-मलाई, इत्र-फुलेल, फूल आदि से आपका चित्त प्रफुल्लित रखेगा। आप आज हमारे लिए खबरें लाइए। मैंने कहा कि आपने मुझे अजब झमेले मे डाल दिया। गहरी भाग बडी उचक्की होती है एक स्तर पर कभी रहने ही नही देती! खैर! जब फस ही गया तो उसी चाल से मैंने भी गुसाईं जी की दुहाई देकर अपने मित्र श्री सर्वदानन्द को फसाया। सर्वदानन्द ने श्रद्धेय बाबू जी (डा० सम्पूर्णानन्द जी) की सीक्रेट फाइल मे से जवाहरलाल जी का वह पत्र चुराकर मुझे नकल करा दिया। जवाहरलाल जी का यह पत्र कितना महत्त्वपूर्ण है, पाठक पढकर खुद ही अन्दाज लगा लें

'माई डियर सम्पूर्णानन्द! तुम्हारी अष्टग्रही की चेतावनी को मैंने कृष्ण मेनन की एलेक्शन मीटिंगो के लिए बम्बई जाने पर खूब अच्छी तरह से महसूस किया। मेरी एक फण्डामेण्टल मजबूरी यह है कि इण्टरनेशनल कारणो से तुम्हारी एस्ट्रालॉजीकल सायस के मुतल्लिक कोई पब्लिक स्टेटमेण्ट नही दे सकता। हाउ-एवर, मैं तुमको तहेदिल से उस चेतावनी के लिए धन्यवाद देता हू। तुम्हे इस वक्त खत लिखने का मेरा खास मकसद यह है कि मेरे सामने राष्ट्रीय जलशक्ति अनुसधानशाला की रिपोर्ट रखी है। उनका कहना है कि होली मे हर साल जितना पानी बरबाद किया जाता है उतने पानी मे देश मे तीन हजार सिनेमाघरो मे बिजली सप्लाई की जा सकती है। यह तो बडे नुकसान और फिक्र और अफसोस

की बात है। अलावा इसके, कुछ भी कहो हमारी फिल्में भारत में भावात्मक एकता ला ही रही हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक हर तरफ एक-से गीत गाए जाते हैं। इसलिए ये कला की रक्षा का सवाल भी है। मैं हिन्दुस्तानी सगीत को बहुत सुनने के बाद भी अपने आपको उसका कुदरती एडमायरर नही बना पाया क्योंकि नहाते वक्त कभी गुनगुनाने की जरूरत महसूस करने पर मैं अब तक पुरानी अंग्रेजी तर्जें ही गुनगुनाता हू। तुम इस फन के भी माहिर हो, लिहाजा मैं चाहता हू कि तुम सिनेमाघरो की अहमियत पर जोर देते हुए होली की दकियानूस रगबाजी बन्द करने के लिए कानून बनाने की सिफारिश अपनी भावात्मक एकता की रिपोर्ट मे करो।

तुम्हारा—जवाहर !"

सर्वदानन्द के घर से ही मैंने मद्रास मे अपने पुराने मित्र और तमिल 'कल्कि' तथा अंग्रेज़ी 'स्वराज्य' के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री सदाशिवम् से ट्रककॉल मिलाई। गोसाईं जी की 'धीरज धर्म मित्र अरु नारी' वाली उक्ति के जोड ही की कोई उक्ति तमिल भाषा मे लिखित महाकवि कम्बन की रामायण से पढ़कर भाव समझने की प्रार्थना मैंने सदाशिवम् जी से की। वे चक्रवर्ती राजाजी के खास आदमी है। उन्होंने मुझे इस प्रकार समाचार दिया :

"हाल ही मे अमेरिका ने सूर्य का अनुसधान करने के लिए शून्य मे एक अनुसधानशाला खोली है। उससे उपलब्ध कुछ तथ्य और आकडे आज ही अमेरिकन एम्बेसी ने श्री राजाजी के नाम भेजे है। उनसे यह पता चला है कि सूरज के सात रगो मे से साढे तीन दशमलव जीरो-जीरो सात रगों का स्टाक अकेले भारत देश की होली मे ही प्रति वर्ष खर्च हो जाता है, इसलिए रगो के असन्तुलन से सूरज दिनोदिन लाल होता जा रहा है।" इसके बाद सदाशिवम् जी ने मुझसे कहा कि "अवर राजा जी इज टेरिब्ली एग्री ओवर दिस। वे एक वक्तव्य देने वाले है।" वक्तव्य मैंने फोन पर ही लिख लिया है जो इस प्रकार है, "सारी दुनिया को इस बात से जबरदस्त धक्का लगेगा कि भगवान सूर्यनारायण क्रमश: कम्युनिस्ट होते जा रहे है। उत्तर भारत मे रगों मे खेली जानेवाली होली ही इसका कारण है। जवाहरलाल हर साल होली खेलकर कम्युनिज्म को बढ़ावा दे रहे है। दिस इज अधर्म। लाइक बकासुर द कांग्रेस इज डिवावरिंग गाड सूर्यनारायण।"

मुझे यह भी बतलाया गया है कि राजा जी रानी गायत्रीदेवी पर इस बात का दबाव डाल रहे है कि वे अपनी जीती हुई सीट से हारे हुए प्रो० रगा को उप चुनाव कराके जिता दें जिसमे कि लोकसभा में रंगान्दोलन जोर पकड़ सके।

इसके बाद एक टिप श्री उपेन्द्र वाजपेयी से मुझे मिली। खबर यह है कि

विभिन्न पार्टियों के हारे हुए कुछ लीडरों ने मिलकर अपनी पराजय के कारण ढूंढने के लिए एक सर्वदलीय जांच समिति बनाई है। सर्वश्री आचार्य कृपलानी, राममनोहर लोहिया, अटलबिहारी वाजपेयी, अशोक मेहता, हरगोविन्द सिंह, त्रिलोकी सिंह और राजनारायण सिंह आदि ने एक स्वर से पराजय के कारणों मे प्रमुखतम कारण गालियों का स्टाक समाप्त हो जाना बतलाया है। प्रायः सभी पार्टियों और वर्गों के हरैलों से इण्टरव्यू करने के बाद इन लीडरों का कहना है कि होली के भडवे प्रति वर्ष गालियो के कोष का अपव्यय कर डालते हैं। यदि एक पंचवर्षीय योजना बनाकर होली के दिनों में उन्हें रोका जाए तो अगले चुनाव तक हर पार्टी के पास गालियों की इतनी प्रचड शक्ति होगी कि हर पार्टी एक-दूसरे को खुलकर मा-बहन तक की सनातन लोक-सांस्कृतिक गालियां देने में समर्थ हो जाएगी।"

इस समाचार के लिए उपेन्द्र को बेनबो के रमगुल्ले खिलाकर और स्वयं छककर खाने के बाद नशे के आखिरी जन्नाटे मे जो आगे चले तो हमारी कार शिवसिह सरोज के रिक्शे से भिड गई। खैर! रिक्शा-कार दोनों ही बालबाल सही-सलामत बच गए। इस अचानक मिलने को सरोज जी ने तीन खबरें मुझे देकर सार्थक बना दिया। सरोज ने एक तो चलती हुई साहित्यिक खबर यह दी कि श्री निर्मलचन्द्र चतुर्वेदी ने श्री चन्द्रभान गुप्ता जी से कहकर हमारे श्रद्धेय भैया साहब राय बहादुर पण्डित श्री नारायण जी चौबे को भांग की ठेकी खोलने का लाइसेन्स दिला दिया है। सरोज ने बतलाया कि पं० इलाचन्द्र जोशी इस समाचार को सुनकर भैया साहब से साझा करने की योजना लिए मन ही मन में घट रहे हैं, किन्तु उनके मन का एक भी विस्फोटक तत्त्व उनके स्वभावगत संकोच को तोडकर भैया साहब से स्पष्ट रूप से कह नहीं पाता।

दूसरे यह बतलाया कि श्री बेढब बनारसी अपने नाश्ते के लिए काशी से एक हण्डिया मे पांच सेर मगदल लाए थे। बेधडक, भ्रमर और योगीन्द्रपति त्रिपाठी ने वह हण्डिया उडाई तो साथ-साथ, पर बाद मे बटवारे पर झगडा हो गया। इसी बीच मे पडोसी अधिकार प्रेम वाला कोई कम्युनिस्ट हण्डिया लेकर चम्पत हो गया।

तीसरा एक छपा हुआ साहित्यिक वक्तव्य सरोज ने मुझे दिखलाया जोकि होली के मेले में वितरित किया जाएगा। वक्तव्य श्री भगवती चरण वर्मा, श्रीरामधारी सिंह दिनकर और श्री यशपाल ने सम्मिलित रूप से दिया है। वक्तव्य का शीर्षक है, 'होली में आग का दुरुपयोग, एक अनन्त मार्मिक समस्या।' वक्तव्य इस प्रकार है :

"हम भारत के साहित्यकार होली के अवसर पर अपने समाज द्वारा मनों-टनों लकड़ी फूंककर मूल्यवान राष्ट्रीय सम्पत्ति का नाश करने की सनातन प्रवृत्ति